आधुनिक जैन-कवि

• • •

रमा जैन
सम्पादिका

भारतीय
ज्ञानपीठ
काशी

भारतीय ज्ञानपीठ के प्रकाशन

प्राकृत

१ महाबन्ध (जैनसिद्धान्त ग्रन्थ) १२)

(प्रेस में)

२ करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र)

संस्कृत

१ न्यायविनिश्चय विवरण—२ भाग

२ मदनपराजय

३ कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ-सूची

४ तत्त्वार्थ श्रुतसागरी

५ नाममाला सभाष्य

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला—हिंदी ग्रन्थाङ्क—१
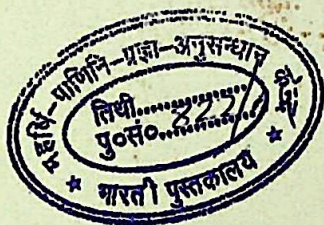
आधुनिक जैन कवि

श्रीमती रमा जैन
सम्पादिका

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

कानपुर दि० जैन परिषद्–पंडालके काव्यमय वाता-
वरणमें काव्यमय भावनाओं एवं असीम अनुरागसे
ओतप्रोत 'इन्होंनें' अपने सुन्दर कवियोंकी
कलित कल्पनाओंके संग्रह और सम्पादनके
उत्तरदायित्वका भार मुझे ही सौंपा।
फलतः अपने प्रयत्नोंकी पुस्तक-
पिटारीको 'इनकी' सेवामें प्रस्तुत
करते हुए संकोच इसलिए नहीं
है कि इसमें सब 'इनका' ही
है—इनके ही हैं सुन्दर
कवि, इनकी ही
हैं प्रिय कवि-
ताएँ और है
'इनकी' ही
अपनी

—रमा
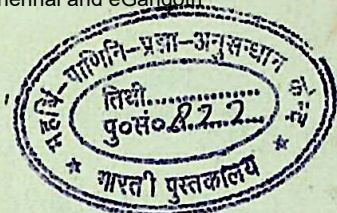
प्रकाशकीय

स्वर्गीय आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने एक वार लिखा था—"जैन धर्मावलम्बियोंमें सैकड़ों साधु-महात्माओं और हजारों विद्वानोंने ग्रंथ रचना की है। ये ग्रंथ केवल जैनधर्मसे ही सम्वन्ध नहीं रखते, इनमें—तत्व-चिन्तन, काव्य, नाटक, छन्द, अलंकार, कथा-कहानी, इतिहाससे सम्वन्ध रखनेवाले ग्रन्थ हैं जिनके उद्धारसे जैनेतरजनोंकी भी ज्ञान-वृद्धि और मनोरंजन हो सकता है। भारतवर्षमें जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसके अनुयायी साधुओं और आचार्योंमेंसे अनेक जनोंने धर्म-उपदेशके साथ ही साथ अपना समस्त जीवन ग्रन्थ-रचना और ग्रन्थ-संग्रहमें खर्च कर दिया है। इनमें कितने ही विद्वान वरसातके चार महीने वहुधा केवल ग्रन्थ लिखनेमें ही विताते रहे हैं। यह उनकी इस प्रवृत्तिका ही फल है जो वीकानेर, जैसलमेर, नागौर, पाटन, दक्षिण आदि स्थानोंमें हस्तलिखित पुस्तकोंके गाड़ियों वस्ते आज भी सुरक्षित पाये जाते हैं।"

ऐसे ही अनुपलब्ध अप्रकाशित ग्रन्थोंके अनुसन्धान, सम्पादन और प्रकाशनके लिए सन् १९४४ में भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना की गई थी। जैनाचार्यों और जैनविद्वानों द्वारा प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश साहित्यका भंडार अनेक लोकोपयोगी रचनाओंसे ओतप्रोत है। हिन्दी-गुजराती, कन्नड़ आदिमें भी महत्त्वपूर्ण साहित्य निर्माण हुआ है। किन्तु जनसाधारणके आगे वह नहीं आ सका है, यही कारण है कि अनेक ऐतिहासिक, साहित्यिक और आलोचक साधनाभावके कारण जैनधर्मके सम्वन्धमें लिखते हुए उपेक्षा रखते हैं। और उल्लेख करते भी हैं, तो ऐसी मोटी और भद्दी भूल करते हैं कि जनसाधारणमें वड़ी भ्रामक धारणाएँ फैलती रहती हैं।

किसी भी देश और जातिकी वास्तविक स्थितिका दिग्दर्शन उसके साहित्यसे हो सकता है। जैनोंका प्राचीन साहित्य प्रकाशमें नहीं आया, और नवीन समयोपयोगी निर्माण नहीं हो रहा है। जिस तीव्र गतिसे वर्तमान भारतमें प्राचीन और अर्वाचीन-साहित्यका निर्माण हो रहा है, उसमें जैनोंका सहयोग वहुत कम है। जैन पूर्वजोंने अपनी अमूल्य रचनाओंसे भारतीय ज्ञानका भण्डार भरा है, उनके ऋणसे उऋण होनेका केवल एक ही उपाय है कि हम उनकी कृतियोंको प्रकाशमें लायें, और लोकोपयोगी नवीन साहित्यका निर्माण करें। ताकि साहित्यिक-संसारकी उन्नतिमें हम भरपूर हाथ बटा सकें।

प्राचीन संस्कृत, प्राकृत, पाली जैन और बौद्धग्रंथ एक दर्जन की संख्यामें प्रेसमें हैं—जो शीघ्र ही प्रकाशित हो रहे हैं। और अन्य भारतीय उत्तमोत्तम-ग्रन्थोंका सम्पादन हो रहा है। प्रस्तुत पुस्तक ज्ञान-पीठकी जैन-ग्रन्थ-मालाका प्रथम पुष्प है। और ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमारानीजीने बड़े परिश्रमसे इसका सम्पादन किया है।

यद्यपि हिन्दी कविता आज जितनी विकसित और उन्नत है उसके आगे प्रस्तुत पुस्तककी कविताएँ कुछ विशेष महत्त्व नहीं पायेंगी, फिर भी यह एक प्रयत्न है। इससे जैनसमाजकी वर्तमान गति-विधिका परिचय मिलेगा, और भविष्यमें उत्तमोत्तम साहित्य-निर्माण करनेका लेखकों और प्रकाशकोंको उत्साह भी। प्रस्तुत पुस्तकके कवियोंमें पुरातत्त्व-विचक्षण पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार, पं० नाथूरामजी प्रेमी और सत्य-भक्त पं० दरबारीलालजी आदि कुछ ऐसे गौरव योग्य कवि हैं, जो कभीके इस क्षेत्रसे हटकर पुरातन इतिहासकी शोध-खोजमें लगे हुए हैं; अथवा लोकोपयोगी साहित्य-निर्माण कर रहे हैं। काश वे इस क्षेत्रमें ही सीमित रहे होते तो आज अवश्य जैनों द्वारा प्रस्तुत किया हुआ कविता-साहित्य भी गौरवशाली होता। मुख्तार साहबकी लिखी 'मेरी भावना' ही एक ऐसी अमर रचना है, जिसे आज लाखों नर-नारी पढ़कर आत्म-सन्तोष

करते हैं। नवीन कवियोंमें 'श्री हुकमचन्दजी बुखारिया' ऐसे उदीयमान कवि हैं, जिनसे हिन्दी साहित्यको एक न एक रोज़ क़ीमती रचनाएँ प्राप्त होंगी।

ज्ञानपीठकी स्थापनाके ३-४ महीने बाद ही लखनऊमें जैनपरिषद्का अधिवेशन था, उसके सभापति श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजीकी अभिलाषा थी कि 'आधुनिक जैन कवि' उस समय तक अवश्य प्रकाशित कर दिया जाय। इस अल्प समयमें प्रस्तुत पुस्तकका सम्पादन और प्रकाशन हुआ, और पहिला संस्करण एक सप्ताहमें समाप्त हो गया, माँग बढ़ती रही, उलाहने आते रहे, और सब कुछ साधन होते हुए भी दूसरा संस्करण शीघ्र प्रकाशित नहीं हो सका। संशोधित प्रेस कापी तैयार पड़ी रही। परन्तु प्रयत्न करनेपर भी इससे पहले प्रकाशित नहीं हो सकी! कहीं-कहीं कवि-परिचय भी भूल से छूट गया है जिस का हमें खेद है।

सम्पादिका श्रीमती रमारानीजीका यह पहला प्रयास है, यदि वे इस ओर अग्रसर रहीं, तो उनसे हमको भविष्यमें काफी आशाएँ हैं।

डालमियानगर
१८ अक्तूबर १९४६

अयोध्याप्रसाद गोयलीय
—मंत्री

प्रवेश

कवियोंका साम्प्रदायिक आधारपर वर्गीकरण करना शायद जाति-विशेषके लिए गौरवकी बात हो, कविके लिए नहीं। जो कवि है, चाहे जहाँका भी हो, उसकी तो जाति और समाज एक ही है 'मानव-समाज'। कविकी मुस्कानमें मानवताका वसन्त खिलता है और उसके आँसुओंमें विश्वका पतझड़ झरझराता है। यह सारा मानव-समाज हृदयके नाते एक ही है। अपनी माताके लिए जो श्रद्धा, पुत्रके लिए जो ममता, बिछुड़ी हुई प्रेयसीके लिए जो विकलता और अपमानके लिए जो क्षोभ एक भारतीय किसानके हृदयमें उमड़ता है, वही लन्दनके सम्राट्के हृदयमें और वही उत्तरी ध्रुवके अन्तिम छोरपर बसनेवाले 'एस्कीमो'के हृदयमें भी! इस श्रद्धा, ममता, विकलता और क्षोभ आदिकी अनुभूतियोंको कवि शब्दोंसे, चित्रकार तूलिकासे, गायक स्वरोंसे, शिल्पी छैनीसे और कलावित् अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गकी क्रिया-प्रक्रिया द्वारा साकार रूप देता है।

इस प्रकार साहित्य, सङ्गीत और कलाके उद्गम तथा उद्देश्यकी एकताके बीचमें मैं जो कवियोंको आधुनिकताकी सीमामें घेरकर 'जैनत्व'के वर्गमें विभक्त कर रही हूँ उसका उद्देश्य क्या है? केवल यही कि इस पुस्तकको लिखते समय सारे साहित्यकी जिम्मेदारी अपने सिरपर लादनेसे बच जाऊँ और अपने परिश्रमका क्षेत्र छोटा कर लूँ। दूसरे, जब कवि मानव-समाजका प्रतिनिधि है, तो उसे ढूँढ़कर मानव-समाजके सामने लानेका काम भी तो किसीको करना ही चाहिए। मैं अपनी जाति और समाजके सम्पर्कके द्वारा जिन कवियोंको जान सकी हूँ और जिन तक पहुँचना दुर्लभ है, मानवताके उन प्रतिनिधियोंको विशाल साहित्य-संसारके सामने ला रही हूँ। वे अपनी बात अब स्वयं ही आपसे कह देंगे।

इस पुस्तकके लिए सामग्री एकत्रित करनेमें यद्यपि कई महीने लग गये; फिर भी अनेक ऐसे कवि रह गये हैं जिनके साथ पत्र द्वारा सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका अथवा उचित सामग्री प्राप्त नहीं हुई। सङ्कलनका काम अपनी 'रुचि'के आधारपर किया गया है, इसलिए उससे सब-किसीको सन्तोष होगा ऐसी कल्पना करनेके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। हिन्दीके आधुनिक जैन-कवियोंकी कविताओंका एक भी ऐसा संग्रह और सङ्कलन मुझे नहीं प्राप्त हो सका जिससे वर्गीकरणके लिए कुछ दिशा-निर्देश मिलता। शायद, ऐसी पुस्तक कोई प्रकाशित ही नहीं हुई।

मैंने इस पुस्तकको मुख्यतः निम्न शीर्षकोंमें विभक्त किया है—

१. युग-प्रवर्तक

२. युगानुगामी

३. प्रगति-प्रेरक

४. प्रगति-प्रवाह

५. ऊर्मियाँ

६. गीति-हिलोर और

७. सीकर।

पहले तीन शीर्षक कविप्रधान हैं, और शेष चारमें काव्य-धारा प्रधान है। फिर भी, कवियोंकी प्रधानता, विषयोंका सङ्कलन, सामग्रीकी उपलब्धि-अनुपलब्धि और वर्तमान परिस्थितिमें पुस्तकके कलेवरको कम करनेकी आवश्यकता इत्यादि सब बातोंका खयाल रखनेके कारण बीच-बीचमें पुस्तककी योजनामें छोटे-मोटे परिवर्तन करने पड़े हैं।

'युग-प्रवर्तक' कवियोंके सम्बन्धमें इतना ही कहना है कि नये जागरण और सुधारके युगमें जिस विचार-स्रोतको इन महान् आत्माओंने समाजकी मरुभूमिकी ओर उन्मुख किया, उसने समाज-मनको नया जीवन और उसके साहित्यको नया स्वर दिया। वे वर्तमान युगके महारथी हैं, और

मुझे कहनेकी छूट दी जाय तो मैं तो इन्हें 'प्रकाश-स्तम्भ' कहनेमें भी न सकुचाऊँगी।

'युगानुगामी' कवियोंमें हमारी समाजके अनेक मान्य विद्वान्, सम्पादक और विचारक हैं, जो हमारी प्राचीन संस्कृतिके संरक्षणमें लगे हुए हैं; और वे निस्सन्देह युगारम्भकी नई प्रेरणाको साहित्य और समाज-सुधारके क्षेत्रमें परीक्षणके द्वारा आगे ले जानेवाले हैं। इस समुदायके कवियोंकी कविताओंमें यह वैशिष्ट्य है कि वे प्रधानतः धर्ममूलक, दार्शनिक या सुधारवादी हैं।

कविताकी दृष्टिसे तीसरा परिच्छेद, 'प्रगति-प्रवर्तक', विशेष महत्त्वका है। इसमें समाजके वह चुने हुए नवयुवक कवि हैं जो 'युग-प्रवर्तक'से आगे बढ़ गये हैं और जिन्होंने हिन्दी कविताकी प्रचलित शैलियोंको अपनाकर कविताको भाव, भाषा और विषयकी दृष्टिसे प्रगतिकी श्रेणीमें ला दिया है। इनमेंसे अनेक कवियोंको हमारे साहित्यमें प्रगतिके महारथियोंके रूपमें स्मरण किया जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

अब जो प्रगतिकी धारा वह रही है, उस प्रवाहमें नये-नये कवि अपनी-अपनी प्रतिभा, रुचि और क्षमताके अनुसार अवगाहन कर रहे हैं। इस 'प्रगति-प्रवाह'में हमारे समाजकी सुकुमारमना कवयित्रियोंकी सरस भाव-ऊर्मियाँ तरंगित हो रही हैं; तरुण कवियोंकी 'गीति-हिलोर' नृत्य कर रही है; और अनेक छोटे-बड़े कवियोंके प्रयत्न-सीकर उल्लाससे उछल रहे हैं।

हमारे इन कवि-कवयित्रियोंका आजके प्रगतिशील हिन्दी साहित्यमें क्या स्थान है; यह प्रश्न करने और उसका उत्तर खोजनेका समय अभी नहीं आया। यदि यह पुस्तक हमारे साहित्यिकोंकी विचारधाराको इस प्रश्नकी ओर उन्मुख कर सकी, और यदि हमारे कवियोंमें इस प्रश्नके समाधान करनेकी इच्छा जाग्रत हो सकी, तो मैं अपने इस प्रयत्नकी सफलतापर उचित गर्व अनुभव करूँगी।

मैं चाहती थी, इस पुस्तकको अपने कवि-कलाकारोंके चित्रोंसे सजाती और हर प्रकारसे इसे सुन्दरतम बनाती; पर मुझे बहुतसे कवियोंके चित्र प्राप्त न हो सके और जिनके चित्र आये भी उनमेंसे अधिकांश ऐसे थे जिनके सुन्दरतर ब्लॉक नहीं बन सकते थे। भविष्यमें सम्भव हुआ तो इन कमियोंको दूर करनेका अवश्य प्रयत्न करूँगी।

मुझे खेद है कि मैं अनेक कृपालु कवि-कवियित्रियोंकी रचनाएँ जो इस संग्रहके लिए प्राप्त हुई थीं, सम्मिलित नहीं कर पाई। मैं उनसे क्षमाप्रार्थी हूँ। मेरा विश्वास है कि अगले संस्करण तक उनकी नई रचनाएँ और भी अधिक सुन्दर होंगी और तब तक मुझमें भी सम्पादनकी क्षमता बढ़ सकेगी।

इस पुस्तकमें जिन साहित्यिकोंकी रचनाएँ जा रही हैं, उनकी कृपा और सहयोगके लिए मैं हृदयसे आभारी हूँ। भाई कल्याणकुमार 'शशि'ने कई कवियोंके पास स्वयं पत्र लिखकर उनसे कविताएँ भिजवाईं, इसके लिए मैं आभारी हूँ। पंडित अयोध्याप्रसादजी गोयलीयने उचित सुझाव दिये हैं और 'इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस'के सुयोग्य व्यवस्थापक श्री कृष्णप्रसाद दरने इसके मुद्रणमें हर तरहसे सहयोग दिया है; अतः वे दोनों धन्यवादके पात्र हैं।

अब, रह गये श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन! उनके विषयमें जो कहना चाहती हूँ, उसके उपयुक्त शब्द नहीं सूझ रहे हैं। वह साहित्यिक और कवि हैं; अपनी भावुक कल्पना से समझ लेंगे कि मैंने क्या कहा और क्या नहीं कहा। बस।

डालमिया नगर
जून १९४४

रमा जैन

निर्देश

युग-प्रवर्तक

युगानुगामी

पृष्ठ

प्रगति-प्रेरक

पृष्ठ

प्रगति-प्रवाह

पृष्ठ

ऊर्मियाँ

पृष्ठ

गीति-हिलोर

सीकर

पृष्ठ

युग-प्रवर्तक

पंडित जुगलकिशोर मुख़्तार, 'युगवीर'

श्री पंडित जुगलकिशोरजी मुख़्तारने गत वर्ष जब अपने महान् आदर्श-मूलक जीवनके छ्यासठवें हेमन्तमें प्रवेश किया तो सम्पूर्ण जैन समाज और साहित्यिक जगत्ने एक सम्मान-समारोहका आयोजन करके उनकी सेवाओंके आगे हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण की। इस साहित्य-तपस्वीके ६६ वर्षकी जीवन-शाधनाने समाजकी वर्त्तमान पीढ़ी और भारतवर्षकी आगे आनेवाली सन्ततियोंके पथ-प्रदर्शनके लिए ऐसे प्रकाश-स्तम्भका प्रतिष्ठापन कर दिया है जो अक्षय और अटल होकर रहेगा या रहना चाहिए।

आपकी साहित्यिक सेवाओं, शोध और खोजकी अनवरत कार्य-धाराओं तथा पुरातत्त्व और इतिहासके विशाल ज्ञानको देश-विदेशके विद्वानोंने प्रामाणिकताकी कसौटीपर कसकर उसे खरा सोना बताया है। किन्तु ये विद्वानों और मनीषियोंकी दुनियाँकी बातें हैं। समाज या जन-समूहके जीवनसे उनका क्या संबंध है, यह समझनेके लिए जनताको अपने ज्ञानका धरातल ऊँचा उठाना होगा। सौभाग्यसे पंडित जुगलकिशोरजीके जीवन-कार्यकी यह केवल एक दिशा है।

समाजके सार्वजनिक जीवनकी दृष्टिसे जिस बातका सबसे अधिक महत्त्व है वह तो यही है कि पंडित जुगलकिशोरजी एक प्रमुख युग-प्रवर्त्तक हैं—धार्मिक क्षेत्रमें, सामाजिक क्षेत्रमें और साहित्यिक क्षेत्रमें। उन्होंने धार्मिक श्रद्धाको पाखंड-पिशाचके पंजेसे छुड़ाया है, समाजके सर्वाङ्गमें फैले हुए और प्राणों तक परिव्याप्त रूढ़ि-विषको निर्भीक आलोचनाके नश्तरसे निष्क्रिय कर देनेकी सफल चेष्टा की है, और साहित्य-फुलवाड़ीमें—जिसकी कि जमीन तक फटने लगी थी और जहाँके लोग सुगन्ध-दुर्गन्धकी पहचान ही भूले जा रहे थे—भावोंके सुरभित सुमन खिलाये हैं।

आपके कवि-जीवनकी एक झाँकी सम्मान-समिति द्वारा प्रकाशित पत्रिकाने इस प्रकार कराई है :—

"अपने यौवनके आरंभमें उन्होंने कविके रूपमें अपने साहित्यिक कार्यका आरंभ किया था और 'मेरी भावना' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी। योरोपकी राजनैतिक पार्टियोंके चुनाव 'मैनिफ़ैस्टो' (manifesto) की तरह यह उनकी जीवन-साधनाका 'मैनिफ़ैस्टो' (घोषणापत्र) था। इसकी लाखों प्रतियाँ अभी तक छप चुकी हैं। भारतवर्षकी अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी, कनडी आदि अनेक भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है। अनेक प्रान्तीय म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी संस्थाओंने इसे राष्ट्रीय गानादिके रूपमें स्वीकार किया है और वहाँ नित्य प्रति इसकी प्रार्थना होती है। हिन्दीमें इस पुस्तकका प्रकाशन वितरण और बिक्रीका शायद अपना ही रिकार्ड है।

अनेक संस्थाओंके सार्वजनिक उत्सवोंका आरंभ इसी प्रार्थनासे होता है। न जाने कितने अशान्त हृदयोंको इसने शान्ति प्रदान की है और कितनोंको सन्मार्गपर लगाया है। उनकी कुछ कविताएँ 'वीर-पुष्पाञ्जलि' के नामसे २३ वर्ष पहले प्रकाशित हुई थीं। उसके बाद भी 'महावीर-सन्देश' जैसी कितनी ही सुन्दर भावपूर्ण कविताएँ लिखी तथा प्रकट की गई हैं।"

संसारके साहित्यके लिए और मानव-जगत्के लिए 'मेरी भावना' एक जैन-कविकी इस युगकी बहुत बड़ी देन है; और 'आधुनिक जैन-कवि'का प्रारम्भ इसी कविता—इसी राष्ट्रीय प्रार्थना—से हो रहा है।

काव्य-जगत् और कार्य-जगत् दोनोंमें पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार सच्चे 'युगवीर' सिद्ध हुए हैं।

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्षमार्गका निस्पृह हो उपदेश दिया,

बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा
या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह
चित्त उसीमें लीन रहो।१।

विषयोंकी आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव-धन रखते हैं,
निज-परके हित-साधनमें जो निश-दिन तत्पर रहते हैं;

स्वार्थ - त्यागकी कठिन तपस्या
बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके
दुख - समूहको हरते हैं।२।

रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्यामें यह चित्त सदा अनुरक्त रहे;

नहीं सताऊँ किसी जीवको
झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
परधन-बनितापर न लुभाऊँ
सन्तोषामृत पिया करूँ।३।

अहंकारका भाव न रक्खूँ, नहीं किसीपर क्रोध करूँ,
देख दूसरोंकी बढ़तीको कभी न ईर्षा-भाव धरूँ;

रहे भावना ऐसी मेरी
सरल सत्य व्यवहार करूँ,
बने जहाँ तक इस जीवनमें
औरोंका उपकार करूँ।४।

मैत्री-भाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवोंपर मेरे उरसे करुणा-स्रोत वहे;

दुर्जन क्रूर कुमार्गरतोंपर
क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर
ऐसी परिणति हो जावे।५।

गुणी जनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे;

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं
द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहणका भाव रहे नित
दृष्टि न दोषोंपर जावे।६।

कोई बुरा कहे या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।

अथवा कोई कैसा ही भय
या लालच देने आवे,
तो भी न्याय-मार्गसे मेरा
कभी न पद डिगने पावे।७।

होकर सुखमें मग्न न फूलें, दुखमें कभी न घबरावें,
पर्वत नदी श्मशान भयानक अटवीसे नहिं भय खावें ;

रहे अडोल अकम्प निरन्तर
यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योगमें
सहनशीलता दिखलावे।८।

सुखी रहें सब जीव जगत्के, कोई कभी न घबरावे,
वैर-भाव अभिमान छोड़, जग नित्य नये मंगल गावे ;

घर-घर चर्चा रहे धर्मकी
दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना
मनुज-जन्मफल सब पावें।९।

ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें वृष्टि समयपर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजाका किया करे ;

रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले
प्रजा शान्तिसे जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगतमें
फैल सर्व-हित किया करे।१०।

फैले प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूरपर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करे ;

बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे
देशोन्नतिरत रहा करें,
वस्तु-स्वरूप विचार खुशीसे
सब दुख-संकट सहा करें।११।

अज सम्बोधन

(वध्यभूमिकी ओर ले जायेजानेवाले बकरेसे)

हे अज, क्यों विषण्ण-मुख हो तुम, किस चिन्ताने घेरा है ?
पैर न उठता देख तुम्हारा, खिन्न चित्त यह मेरा है ;

देखो, पिछली टाँग पकड़कर
तुमको वधिक उठाता है ;
और ज़ोरसे चलनेको फिर
धक्का देता जाता है ।१।

कर देता है उलटा तुमको, दो पैरोंसे खड़ा कभी,
दाँत पीसकर ऐंठ रहा है, कान तुम्हारे कभी-कभी ;

कभी तुम्हारे क्षीण-कुक्षिमें
मुक्के खूब जमाता है,
अण्ड कोषको खींच नीच यह
फिर-फिर तुम्हें चलाता है ।२।

सहकर भी यह घोर यातना तुम नहिं क़दम बढ़ाते हो,
कभी दुबकते, पीछे हटते, और ठहरते जाते हो ;

मानो सम्मुख खड़ा हुआ है
सिंह तुम्हारे बलधारी,
आर्तनादसे पूर्ण तुम्हारी
'मैं...मैं..' है इस दम सारी ।३।

शायद तुमने समझ लिया है, अब हम मारे जायेंगे,
इस दुर्बल औ दीन दशामें भी नहिं रहने पायेंगे ;

छाया जिससे शोक हृदयमें
इस जगसे उठ जानेका,
इसीलिए है यत्न तुम्हारा
यह सब प्राण बचानेका ।४।

पर ऐसे क्या बच सकते हो, सोचो तो, है ध्यान कहाँ ?
तुम हो निबल, सबल यह घातक, निष्ठुर, करुणा-हीन महा ;

स्वार्थ-साधुता फैल रही है
न्याय तुम्हारे लिए नहीं,
रक्षक भक्षक हुए, कहो फिर
कौन सुने फ़रियाद कहीं ।५।

इससे बेहतर खुशी-खुशी तुम वध्य-भूमिको जा करके,
वधिक-छुरीके नीचे रख दो निज सिर स्वयं झुका करके ;

आह भरो उस दम यह कहकर
"हो कोई अवतार नया,
महावीर के सदृश जगतमें
फैलावे सर्वत्र दया !" ।६।

पंडित नाथूराम, 'प्रेमी'

सम्भव है कुछ लोग पं० नाथूरामजीको न जानते हों, पर प्रेमीजीको सारा हिन्दी-संसार जानता है। 'प्रेमी' उपनाम इस बातका द्योतक है कि प्रारम्भमें आप कविके रूपमें ही साहित्यकी रंगभूमिमें उतरे थे। आज कवि 'प्रेमी'के जीवन-दीपकी स्निग्ध आभाको उन पंडित नाथूरामजीकी प्रखर प्रतिभाके सूर्यने मन्द कर दिया है जो देशके प्रसिद्ध लेखक हैं, सम्पादक हैं, इतिहासज्ञ हैं, समालोचक हैं, विचारक हैं, और हैं हिन्दीकी सबसे सुष्ठु प्रकाशन-संस्था 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय' के सम्पन्न संचालक तथा जैन-साहित्यकी प्रमुख प्रकाशन-संस्था 'जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय'के संस्थापक। स्वयं 'प्रेमी' जी ही उस कविको 'अतीतका गीत' मानने लगे हैं। वह अपने एक पत्रमें लिखते हैं :—

"मैं कवि तो नहीं हूँ। लगभग ४०-४२ वर्ष पहले कवि बननेकी चेष्टा की थी, और तब बहुत वर्षों तक कवि कहलाया भी, परन्तु कवि बनते नहीं हैं, वे स्वाभाविक होते हैं। प्रयत्न करके कवि नहीं बना जाता, पद्य लेखक बना जाता है। सो मैं पद्य-निर्माता बनकर ही रह गया और पीछे धीरे धीरे पद्य लिखना भी छोड़ बैठा।

"अपनी रचनाओंको मैंने संग्रह करके नहीं रखा। संग्रह-योग्य वे थीं भी नहीं। ८-१० वर्ष पहले सुहृद्वर पं० जुगलकिशोरजी मुख़्तारने 'मेरी भावना' साइजमें 'स्तुति-प्रार्थना' नामकी पुस्तिका छपाई थी। उसमें मेरी ४-६ रचनाएँ हैं। पर मेरे पास उसकी भी कोई कापी नहीं है।"

'प्रेमी'जीकी महत्ताने उन्हें नम्र बनाया है। वह अपनी कविताके विषयमें कुछ भी कहें, इसमें सन्देह नहीं कि ४० वर्ष पूर्व उनकी कविताओंने समाजमें नये युगका आह्वान किया, कवियोंको नई दिशा दिखाई, कविताको

नई शैली दी और कल्पनाको नये पंख प्रदान किये। उन्होंने साहित्यका भी निर्माण किया है और साहित्यिकोंका भी !

उनकी दो-एक कविताएँ—एक 'सद्धर्म-सन्देश' और दूसरी 'मेरे पिताकी परलोक-यात्रापर' का अंश—यहाँ दी जाती हैं। अन्तकी रचनाके विषयमें 'प्रेमी' जीने लिखा है :—

"यह मैंने सन् १९०६ में अपने पिताकी मृत्युके समय लिखी थी।... उतनी अच्छी तो नहीं है, परन्तु मैंने रोते-रोते लिखी थी, इसलिए उसमें मेरी अन्तर्वेदना बहुत-कुछ व्यक्त हुई है।"

× × ×

जो भावुक कवि-हृदय अपने पिताकी मृत्युपर अप्रतिहत वेगसे फूट पड़ा था और जिसके आँसुओंके निर्झरमें कविता प्रवाहित हुई थी वह आज जीवनकी संध्यामें अपने जवान एकलौते बेटेको खोकर क्या अनुभव कर रहा है—इसको सोचते ही कल्पना काँप उठती है, बुद्धि कुंठित हो जाती है।

साहित्य-जगत्की समवेदनाके आँसू, 'प्रेमी' जीके दुखको कुछ अंशोंमें बँटा सकें—यही कामना है।

सद्धर्म-सन्देश

मन्दाकिनी दयाकी जिसने यहाँ बहाई,
हिंसा, कठोरताकी कीचड़ भी धो बहाई,
समता-सुमित्रताका ऐसा अमृत पिलाया,
द्वेषादि रोग भागे, मदका पता न पाया।१

उस ही महान् प्रभुके तुम हो सभी उपासक,
उस वीर वीर-जिनके सद्धर्मके सुधारक,
अतएव तुम भी वैसे बननेका ध्यान रक्खो,
आदर्श भी उसीका, आँखोंके आगे रक्खो।२

संकीर्णता हटाओ, मनको बड़ा बनाओ,
निज कार्यक्षेत्रकी अब सीमाको कुछ बढ़ाओ,
सब हीको अपना समझो, सबको सुखी बना दो,
औरोंके हेतु अपने प्रिय प्राण भी लगा दो।३

ऊँचा, उदार, पावन, सुख-शान्तिपूर्ण, प्यारा
यह धर्म-वृक्ष सबका, निजका नहीं तुम्हारा;
रोको न तुम किसीको, छायामें बैठने दो,
कुल-जाति कोई भी हो, सन्ताप मेटने दो।४

जो चाहते हो अपना कल्याण, मित्र करना,
जगदेक-बन्धु जिनका पूजन पवित्र करना;
दिल खोल करके करने दो चाहे कोई भी हो,
फलते हैं भाव सबके, कुल-जाति कोई भी हो।५

सन्तुष्टि शान्ति सच्ची होती है ऐसी जिससे
ऐहिक क्षुधा पिपासा रहती है फिर न जिससे,
वह है प्रसाद प्रभुका, पुस्तक स्वरूप, उसको
सुख चाहते सभी हैं, चखने दो चाहे जिसको।६

यूरुप अमेरिकादिक सारे हीं देशवाले
अधिकारि इसके सब हैं, मानव सफ़ेद-काले;
अतएव कर सकें वे उपभोग जिस तरहसे,
यह बाँट दीजिये उन सब हीको इस तरहसे।७

यह धर्मरत्न, धनिको! भगवानकी अमानत,
हो सावधान सुन लो, करना नहीं खयानत;
दे दो प्रसन्न मनसे यह वक़्त आ गया है,
इस ओर सब जगत्का अब ध्यान लग रहा है।८

कर्त्तव्यका समय है, निश्चिन्त हो न बैठो,
थोड़ी बड़ाइयोंमें मदमत्त हो न ऐंठो;
'सद्धर्मका सँदेशा प्रत्येक नारी नरमें
सर्वस्व भी लगा कर फैला दो विश्व-भरमें।९

पिताकी परलोकयात्रापर

× × ×

इस प्रकार जब तक मैं रोया तब तक मिल करके सब लोग,
अर्थि सजाकर चले सुविधिवत्, देना पड़ा मुझे भी योग;
पहुँचे वहाँ जहाँ अगणित जन जले खाकमें सोते हैं,
पुद्गल-पिण्डोंके रूपान्तर जहाँ निरन्तर होते हैं।१

चिता बना उस प्रेत-भूमिमें 'प्रेत' पिताका पधराया,
किया चरम संस्कार पलकमें प्रजलित हुई अनल माया;
धाँय-धाँयकर जीभ काढ़ तब धूम-ध्वजने धधक-धधक,
मिला दिया फिर जड़में जड़को कर अंगोंको पृथक्-पृथक्।२

दी प्रदक्षिणा मैंने तब उस जलती हुई चिताको घेर,
हृदय थाम, कर अश्रु संवरण, किया निवेदन प्रभुसे, टेर;
"शान्ति-प्रदायक, शान्तिनाथ जिन, शोक शान्त सबका करके,
जनक-जीवको शान्त-रूप निज देना शरण कृपा करके"।३

इस चरित्रको देख, चित्त सबके ही हुए विरक्त विशेष,
सदय हुए पाषाण-हृदय भी, दुष्कर्मोंसे डरे अशेष;
रहें निरन्तर यदि अन्तरमें ऐसे ही परिणाम कहीं,
तो समझो संसार पार होनेमें कुछ भी वार नहीं।४

जीवन-लीलाकी समाप्ति यह पढ़के पाठक समझेंगे,
जल बुद्बुद सम जीवन जगमें इसके लिए न उलझेंगे;
स्व-स्वरूपका सदा चिन्तवन करके परको छोड़ेंगे,
परके पोषक मोहक निजके भोगोंसे मुँह मोड़ेंगे।५

श्री भगवन्त गणपति गोयलीय

आपका वास्तविक नाम श्री भगवानदास है, आपके पिताका नाम श्री गणपतिलाल था। कविताका कल्पवृक्ष आपके कुटुम्बमें सदा ही फूला फला है। आपके पितामह श्री भूरेलालजी मोदी आशुकवि थे।

भगवन्तजी बहुपाठी, विचारशील और प्रतिभावान् व्यक्ति हैं। हिन्दी-हिन्दुस्तानीके अतिरिक्त आपको बंगला, गुजराती और मराठीके साहित्यका भी अच्छा ज्ञान है।

आपकी गद्य-पद्यमय प्राथमिक रचनाएँ प्रायः २५-३० वर्ष पहले 'विद्यार्थी' और 'भारतजीवन' नामक पत्रोंमें प्रकाशित हुई थीं। आपकी कविताओंको उस समय भी बड़ी रुचिसे पढ़ा जाता था। अनेक कवियोंको आपकी रचनाओंसे स्फूर्ति मिली और आपके विचारोंसे समाजमें जाग्रति हुई।

आप 'जातिप्रबोधक', 'धर्म-दिवाकर' और 'महाकोशल-कांग्रेस-बुलैटिन' के वर्षों तक सम्पादक रहे हैं। आपके लेख, कविताएँ और कहानियाँ भारतके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रोंमें छपती रही हैं। 'जाति-प्रबोधक'में लिखी हुई आपकी कहानियोंको हिन्दुस्तान-भरमें देशी पत्रोंने उद्धृत किया और सुधारक-संस्थाओंने अनुवादित कर लाखोंकी संख्यामें बँटवाया। आपकी कहानियोंका संग्रह हिन्दीमें भी छपा था।

भगवन्तजी कर्मठ देश-सेवक हैं। आप रायपुर सेन्ट्रल-जेलकी काली कोठरियोंमें महीनों रहे और वहाँके "उच्च पदाधिकारियोंके आदेशपर आपको भयंकर मार मारी गई जिसकी आवाज नागपुर कौन्सिलसे टकराई।"

आपकी कविताओंमें सुकुमार भावना और कोमल अनुभूतिके दर्शन होते हैं। हृदय-गत भावको आप चुने हुए सरस शब्दोंमें व्यक्त करके पाठककी हृत्तन्त्रीको झनझना देते हैं।

सिद्धवरकूट

सिद्धवरकी ही असीम पुनीतता
पातकीको खींच ले आई इधर ;
मैं नहीं आया, न मेरा दोष है,
हे अचल, हे शैल, हे सारङ्गधर !

फिर भला क्यों मौन है धारण किया,
जानते हो क्या कि हूँ मैं पातकी ;
हाय, तुम हीं सोचने जब यों लगे
तो कमी कलिमें रही किस बातकी ?

मौनका कुछ दूसरा हीं हेतु है,
गिरि, न तुम यों सोचते होगे, अरे ;
याद तो क्या पूर्व दिन हैं आ रहे,
गर्व-मिश्रित, सौख्य औ आशा भरे–

जब कि मुनिगण ठौर-ठौर विराजके
या खड़े हो, योग थे करते रहे ;
और फिर उपदेश दे चिर सुख-भरे,
विश्वके विकराल दुख हरते रहे ।

तो उन्हींके विरहमें या ध्यानमें
इस तरह एकान्तमें एकाग्र हो ;
ध्यान क्या तुम कर रहे आनन्दसे ?
धन्य गिरिवर, सिद्धवर, तुम धन्य हो !

या कि उनकी स्वार्थपरतापर तुम्हें,
हे निराश्रित-त्यक्त गिरि, कुछ खेद है ?
तो विचारो, नित्य होता वृक्षका-
विहग-दलसे उषामें विच्छेद है ।

पर विटप तो नित्य हँसता खेलता
और 'हर-हर' गीत गाता सर्वदा ;
चन्द्रिकाके साथ करता मोद है,
औ' न होता मग्न दुखमें एकदा।
और तो फिर सोचते हो क्या भला,
पूर्व वैभव ? आज भी वह कम नहीं ;
इस तुम्हारी धूलिका कण एक ही
विश्वकी सम्पत्तिसे मौलिक कहीं।
सत्य है वह पुण्यकाल न अब रहा,
वृक्ष भी तुमपर न उतने हैं भले,
और फिर वे फल फलाते हैं नहीं,
अऋतुमें क्यों फूलने फलने चले ?
बात ऋषियोंकी किनारे ही रही,
आज उतने विहग क्या बसते यहाँ ?
इन्द्रका आना तुम्हें अब स्वप्न है,
पतित पापी भी अरे आते कहाँ !
रो दिया खगकी चहंकके व्याजसे
शान्त हो हे सिद्धवर, ढाढ़स धरो ;
नर्मदा भी है तुम्हारे दुःखसे
दुःखिनी, कुछ ध्यान उसका भी करो ;
नर्मदा तो आज भी रोती हुई
सिद्धवरके पूर्व वैभवकी कथा ;
कह रही है, बह रही बन मन्थरा,
सान्त्वना देती हुई—'यह दुख वृथा !'।

नर्मदे, तू कौन है, कह तो तनिक,
काम तेरे हैं अलौकिकता भरे ;
परिक्रमा देतीं उधर 'ऊँकार' की,
इधर इनके चरणमें मस्तक धरे।
क्या यही दृष्टान्त है दिखला रही
एक-सी हो उभय धारा तू यहां ;
जैन, वैष्णव आदि सब ही एक हैं,
एक उद्गम, एक मुख सबका वहाँ।
सिद्धवर, भाओ यही अब भावना,
वीर प्रभु-सा शीघ्र ही अवतार हो ;
दानवी दुर्भाव सारे नष्ट हों,
मुक्त हों हम, देशका उद्धार हो।

नीच और अछूत

नालीके मैले पानीसे मैं बोला हहराय,
"हौले वह रे नीच, कहीं तू मुझपर उचट न जाय"।
"भला महाशय" कह पानीने भरी एक मुस्कान,
बहता चला गया गाता-सा एक मनोहर गान।
एक दिवस मैं गया नहाने किसी नदीके तीर,
ज्यों ही जल अञ्जलिमें लेकर मलने लगा शरीर।
त्यों ही जल बोला, "मैं ही हूँ उस नालीका नीर",
लज्जित हुआ, काठ मारा-सा मेरा सकल शरीर।
दतुअन तोड़ी 'मुँहमें डाली' वह बोली मुसुकाय—
"ओह महाशय, बड़ी हुई मैं नालीका जल पाय।

फिर क्यों मुझ अछूत को मुँह में देते हो महराज",
सुनकर उसके बोल हुई हा, मुझको भारी लाज।
खानेको बैठा, भोजनमें ज्यों ही डाला हाथ,
त्यों ही भोजन बोल उठा चट विकट हँसीके साथ—
"नालीका जल हम सबने था किया एक दिन पान,
अतः नीच हम सभी हुए फिर क्यों खाते श्रीमान् ?"
एक दिवस नभमें अभ्रोंकी देखी खूब जमात,
जिससे फड़क उठा हर्षित हो मेरा सारा गात।
मैं यों गाने लगा कि "आओ, अहो, सुहृद घनवृन्द,
बरसो, शस्य बढ़ाओ, जिससे हो हमको आनन्द।"
वे बोले, "हे बन्धु, सभी हम हैं अछूत औ नीच,
क्योंकि पनालीके जलकण भी हैं हम सबके बीच।
कहीं अछूतोंमें ही जाकर बरसेंगे जी खोल
उनके शस्य बढ़ेंगे, होगा उनको हर्ष अतोल।"
मैं बोला, "मैं भूला था, तब नहीं मुझे था ज्ञान,
नीच ऊँच भाई-भाई हैं भारतकी सन्तान।
होगा दोनों बिना न दोनोंका कुछ भी निस्तार,
अब न करूँगा उनसे कोई कभी बुरा व्यवहार।"
वे बोले, "यह सुमति आपकी करे हिन्दका त्राण,
उनके हिन्दू रहनेमें है भारतका कल्याण।
उनका अब न निरादर करना, बनना भ्रात उदार,
भेद भाव मत रखना उनसे, करना मनसे प्यार।"

पंडित मूलचन्द्र 'वत्सल'

विद्यारत्न पं० मूलचन्द्रजी 'वत्सल', साहित्यशास्त्री, समाजके पुराने सरस कवि हैं। पच्चीस वर्ष पूर्व आप कविताके क्षेत्रमें प्रविष्ट हुए थे। उस समय खड़ी बोलीकी कविताओंका जैन कविता-क्षेत्रमें अभाव-सा था। आपके द्वारा प्रवाहित काव्यधाराने एक नवीन दिशाका प्रदर्शन किया। जाति-सुधार और सामाजिक क्रान्तिके लिए आपकी कविताएँ वरदान सिद्ध हुईं। काव्य-क्षेत्रमें आपने जिस निर्भीकताका परिचय दिया वह स्तुत्य है। आप जैन पौराणिक कहानियों और नई शैलीके गद्य लेखोंके प्रमुख प्रचारकों और मार्ग-दर्शकोंमेंसे हैं।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी होनेके अतिरिक्त सदा-जाग्रत है। हिन्दीकी काव्य-धारा परिस्थितियों और प्रभावोंके आधीन जो दिशा पकड़ती गई, आप सावधानीसे स्वयं उसका अनुगमन ही नहीं करते गये किन्तु समाजके कवियोंका नेतृत्व भी करते रहे हैं।

अमरत्व

मैं अग्निकणोंसे खेलूँगा।
वह लाँघ-लाँघ पर्वतमाला, रे, बढ़ी आ रही है ज्वाला,
मैं उसको पीछे ठेलूँगा, मैं अग्नि कणोंसे खेलूँगा।
मैं तो लहरोंसे खेलूँगा।
रे वह प्रमत्त सागर कैसा, लहराता प्रलयंकर जैसा,
मैं उसे करोंपर ले लूँगा, मैं तो लहरोंसे खेलूँगा।
मैं मृत्यु-किरणसे खेलूँगा।
मैं अमर, अरे, कब मरता हूँ, अमरत्व लिये ही फिरता हूँ,
मैं यम-दण्डोंको झेलूँगा, मैं मृत्यु-किरणसे खेलूँगा।

मेरा संसार

दुख भरा संसार मेरा।

कर रहा है वेदनाके
साथ आहोंपर बसेरा।

छिप रहा कुचले हृदयका, करुण क्रन्दन-नाद इसमें,
मूक-प्राणोंका महा सन्ताप है आबाद इसमें,

अश्रु-पूरित लोचनोंमें
है समाया प्यार मेरा।

दुख भरा संसार मेरा।

करुण-क्रन्दन सुन बधिर-सा हो गया है यह गगन तल,
आज धुँधले बन गये हैं, आह, मेरे चित्र उज्ज्वल,

कौन हलका कर सकेगा ?
वेदनाका भार, मेरा।

दुख भरा संसार मेरा।

समझता संसार मेरे करुण रोदनको बहाना,
उमड़ता उन्माद मेरा, आह, किसने आज जाना,

कौन सुनता है, अरे, यह
मौन हाहाकार मेरा।

दुख भरा संसार मेरा।

प्यार !

सजनि हे, कैसा जगका प्यार ?

स्वर्णिम रश्मि-राशिसे जगमग,
तरल हास्यसे विकसित कर जग,
निर्मम रवि हे सजनि,
उषाका करता है संहार।

निशिका अंचल चीर फाड़कर,
उज्ज्वल निज आभा प्रसारकर,
तमका कर संहार पूर्णिमा—
सजती निज शृंगार।

कलिकाओंका हृदय बिंधाकर,
अपने तनका साज सजाकर,
उनकी पीड़ा भूल अरे—
वह बन जाता है हार।
सजनि है कैसा जग-व्यवहार !

श्री गुणभद्र, अगास

पं० गुणभद्रजीको समाजमें कविके रूपमें आदर मिला है और इस आदरको उन्होंने परिश्रम और साधनाके द्वारा प्राप्त किया है। कविताके अनेक रूप हैं, अनेक शैलियाँ हैं। कवि जब साहित्यके किसी विशेष अंगको अपना कार्य-क्षेत्र बना लेता है तो उसकी शैली उसी दिशामें स्थिर-सी होती चली जाती है। श्री गुणभद्रजीने परम्परागत कथा-कहानियोंको पद्य-बद्ध करनेका जो कार्य प्रारम्भमें हाथमें लिया था, उसे वह सफलतासे सम्पन्न करते चले जा रहे हैं। निःसन्देह उनकी शैली मुख्यतः वर्णनात्मक है, भावात्मक नहीं। किन्तु लम्बी कथाओंको भावात्मक शैलीमें रचनेके लिए कविको बहुत समय चाहिए, सुरुचिपूर्ण क्षेत्र चाहिए और निरापद साधन चाहिए। दूसरे, प्रत्येक कवि 'साकेत' नहीं लिख सकता, शायद 'जयद्रथ-वध' लिख सकता है। फिर भी, आज जो 'जयद्रथ-वध' लिख रहा है उससे कल हम 'साकेत' की आशा कर ही सकते हैं। कविको साधनकी भी आवश्यकता होती है और साधनाकी भी।

गुणभद्रजीने साहित्यके एक उपेक्षित अंगको लिया है और उसे वे अपनी रचनासे प्रकाशमें ला रहे हैं। इस दिशामें उनका प्रयास अपने ढंगका अनूठा है। कितने ही उठते हुए कवियोंको उनसे स्फूर्ति और प्रेरणा मिली है। साहित्यकी बहुमुखी आवश्यकताओंके आधारपर गुणभद्रजीको युग-प्रवर्तकोंमें स्थान मिलना ही चाहिए।

आपने अब तक निम्न-लिखित छै ग्रन्थोंकी रचना की है—'जैन-भारती', 'रामवनवास', 'प्रद्युम्नचरित', 'साध्वी', 'कुमारी अनन्तमती' और 'जिन-चतुर्विंशति-स्तुति'।

सीताकी अग्नि-परीक्षा

× × ×

"हे नाथ, दो आदेश, कर विषपान दिखलाऊँ यहाँ,
अथवा भयंकर सर्पको करसे पकड़ लाऊँ यहाँ।
पड़ अग्निमें जगको दिखा दूँ शील कहते हैं किसे,
वह कृत्य कर सकती, कभी मानव न कर सकता जिसे।"

श्री राम बोले "जानता मैं शील तव निर्दोष है,
तो भी कुटिल यह जग तुझे देता निरन्तर दोष है।
घुस अग्निके ही कुण्डमें अपनी परीक्षा दो हमें,
जिससे तुम्हारे शीलका, 'सन्देह' जगतीमें शमे।"

× × ×

अपनी परीक्षाके समय जनकात्मजा बोली यही,
"मनसे वचनसे कायसे परको कभी चाहा नहीं।
यदि, हे अनल, मिथ्यावचन हो भस्म कर देना मुझे,
कैसी सदा मैं विश्वमें हूँ, यह बताना है मुझे।"

शुभ जाप जपती मन्त्रका उस कुण्डमें कूदी तभी,
तत्काल निर्मल नीरसे, वह भर गई वापी तभी।
कुछ काल पहले, हा, महा विकराल ज्वाला थी जहाँ,
अधुना सरोवर पद्मिनीमय शोभता सुन्दर वहाँ।

सुन्दर सरोवर मध्य देवी-सी दिखाती जानकी,
शुभ सत्यके रक्षार्थ यों परवा न की निज प्राणकी।

(एक अंश)

भिखारीका स्वप्न

एक था भिक्षुक जगतका भार था,
माँगके खाना सदा व्यापार था,
बाँधके रहता नगर-तट झोंपड़ी,
हा, बिताता कष्टसे अपनी घड़ी।१

थी न उसको विश्वकी चिन्ता बड़ी,
था सहा करता सभी बाधा कड़ी,
द्रव्यवानों-सा न उसका ठाठ था,
खाटपर कर्कश पुराना टाट था।२

पासमें था एक पानीका घड़ा,
ओढ़नेको था फटा कम्बल कड़ा,
मक्षिकाएँ भिनभिनाती थीं वहाँ,
मच्छरोंकी भी कमी उसमें कहाँ।३

माँग लाता रोटियाँ जो ग्रामसे,
बैठके खाता बड़े आरामसे,
भोज्य जो खाते हुए बचता कहीं,
टाँग देता एक कोनेमें वहीं।४

और सो जाता निकटके तरु तले,
नींदमें जाते पहर उसके चले,
एक दिन मिष्टान्न भिक्षामें मिला,
प्राप्त कर उसका हृदय पंकज खिला।५

मग्न था वह हर्ष पारावारमें,
इन्द्रपद पाया मनो आहारमें,
खा उसे कुछ स्वच्छ शीतल जल पिया,
हो गया था तृप्त-सा उसका हिया।६

फिर बिछाकर खाट टूटी, प्रेमसे,
सो गया भिक्षुक बड़े ही क्षेमसे,
शीघ्र आया स्वप्न तब उसको नया,
विश्वका अधिराज मैं हूँ हो गया ।।७।।

झोंपड़ी मिटकर हुई प्रासाद है,
अब उसीपर पंछियोंका नाद है,
भीतरी सब भाग हीरोंसे जड़े,
दास जोड़े हाथ द्वारोंपर खड़े।८

वाहनोंकी भी रही है त्रुटि नहीं,
हो गई सम्पूर्ण यह मेरी मही,
दिव्य था आभूषणोंसे गात्र भी,
था बना लावण्यका शुभ पात्र ही।९

दिव्य दैवी मंचपर वह शोभता,
नारियोंके मुग्ध मनको मोहता,
दासियाँ पंखा डुलाती थीं खड़ी,
सौख्यकी देखी न थी ऐसी घड़ी।१०

स्वप्नमें साम्राज्य उसने पा लिया,
मानवश भी दण्ड कितनोंको दिया,
शत्रु चढ़ आया तभी उस राज्यपर,
सामने लड़ने चला वह शीघ्रतर।११

देखके हथियार सब उसके नये,
रंकके दृग शीघ्र भयसे खुल गये,
रह गया चित्राम-सा दृगको मले,
सोचता क्या भोग मुझको थे मिले।१२

ले गया है कौन अब उनको छुड़ा,
हो रहा मुझको यहाँ विस्मय बड़ा,
सौम्य-सी इक सृष्टि जो देखी नई,
वह अचानक लुप्त क्योंकर हो गई।१३

स्वप्नसे ही लोकके ये भोग हैं,
खेद! उसमें मर्त्य देते योग हैं!
सोचिये तो स्वप्न-सा संसार है,
धर्म इसमें सार सौ सौ वार है।१४

युगानुगामी

पंडित चैनसुखदास, न्यायतीर्थ, कविरत्न

एक साहित्यिकके नाते, पं० चैनसुखदासजीका स्थान जैनसमाजके विद्वानोंमें बहुत ऊँचा है। आप प्रतिभा-सम्पन्न सफल कवि तो हैं ही; साहित्यके अन्य क्षेत्रोंपर भी आपका अधिकार है। गद्य-लेखक, गल्प-कार, सम्पादक और ओजस्वी वक्ताके रूपमें आपने साहित्य और समाजकी सेवा की है। इसके अतिरिक्त, आप स्वतन्त्र-विचारक और समाज-सुधार सम्बन्धी आन्दोलनोंमें प्रमुख भाग लेनेवाले कर्तव्य-निष्ठ नेता भी हैं।

पं० चैनसुखदासजी लगभग २५-३० वर्षसे साहित्यिक क्षेत्रमें आये हुए हैं। आप जब १५ वर्षके थे तभी उस समयकी प्रमुख संस्कृत पत्रिका 'शारदा' में साहित्यिक लेख और सरस कविताएँ लिखा करते थे। संस्कृतकी पद्यरचनामें आप आशु-कवि हैं। आपमें धाराप्रवाह रूपसे संस्कृत गद्य लिखने और बोलनेकी क्षमता है।

आपकी कविताओंमें रस भी है और ओज भी। यह दार्शनिक तत्त्वको सुन्दर पदावलि द्वारा आकर्षक ढंगसे कहते हैं। तत्त्वकी गहनताको भाषाकी सरसता द्वारा सजाकर आप अपनी कवितामें रहस्यवादकी झलक ले आते हैं, इससे कवितामें विशेष चमत्कार उत्पन्न हो जाता है।

आपके संस्कृत ग्रन्थ 'भावनाविवेक' और 'पावन-प्रवाह' प्रकाशित हो चुके हैं। आप भादवा (भैंसलाना)के रहनेवाले हैं और आजकल जयपुरमें 'दिगम्बर जैन महा पाठशाला'के प्रधानाध्यापक हैं।

सत्ताका अहंकार

तेरा आकार बना कैसे, सागर, बतला इतना विशाल ?

है विन्दु-विन्दुमें अन्तर्हित
तेरा गाम्भीर्य अपार अतल,
इनकी समष्टि यदि विखरे तो
दीखे न कहीं वसुधामें जल।

तेरा स्वरूप तब हो विलुप्त जो आज बना इतना कराल।

तेरी सत्ताका क्या स्वरूप
इस 'बिन्दु-विन्दु'से है विभिन्न ?
तू है अज्ञात अपरिचित-सा,
इस दिव्य तथ्यसे अहंमन्य।

है श्रेय बता किनको उनका जो कुछ भी हैं तेरे कमाल ?

एकैक विन्दुने आ-आकर
तेरा आकार बनाया है,
अपने तनको तुझको देकर
तेरा गाम्भीर्य बढ़ाया है।

त्यों जीवनतत्त्व बने तेरे ज्यों जीवन-पट है तन्तुजाल।

जिनसे इतना वैभव पाया
उनको मत फेंक, अरे, प्रमत्त,
तू इनसे बना, न ये तुझसे
इनको क्या है तेरा प्रदत्त।

सब हँसते हैं ये देख-देख, उपहास जनक तेरी उछाल !

इनके विनाशमें नाश, और
इनके संरक्षणमें रक्षा,
तेरी है, सागर, निराबाध
यह जीवन-रक्षणकी शिक्षा।

तू मान, निरापद है यह पथ, होगा इससे तू ही निहाल।

जीवन-पट

जीवन-पट यह बिखर रहा है

तन्तु जाल सब क्षीण हो गया
सारा स्तम्भक तत्त्व खो गया,
पलभर भी अब रहना इसमें
भगवन्, मुझको अखर रहा है।

सम्मोहनकी मधुमय हाला
पी-पीकर मैं था मतवाला,
नशा आज उतरा है अब तो
जीवन मेरा निखर रहा है।

मृत्यु-लहरपर खेल रहा मैं
सब विपदाएँ झेल रहा मैं,
अन्तर्द्वन्द्व मचा प्राणोंमें
यह समीर-मन मथित रहा है।

अन्तिम वर

बहता-बहता अब आया हूँ,
तेरे श्री चरणोंमें भगवन्
अपनेको लाया हूँ!

अहंकारके ग्रहमें अटका,
पता न पाया तेरे तटका,
भूला था इस दिव्य तथ्यको—
मैं तेरी छाया हूँ!

कभी न जाना क्या अपना है,
क्या जीवन सचमुच सपना है,
क्या यह ही कहना, जगना है,
तू है मेरा आत्मतत्त्व
औ' मैं तेरी काया हूँ!

केवल अब यह वर पाना है,
इसीलिए मेरा आना है,
फिर न कहूँ तेरे समक्षमें
मैं तेरी माया हूँ!

पंडित दरबारीलाल 'सत्यभक्त'

'सत्य-धर्म'के संस्थापक, पंडित दरबारीलालजीने, व्यक्ति और कवि दोनों रूपमें समाज और साहित्यमें अपना विशेष स्थान बनाया है। वह उच्च कोटिके लेखक हैं, विद्वान् हैं, विचारक हैं और कवि हैं। जीवनमें जिस साधनाका मार्ग उन्होंने अपनाया है और जिस मानसिक उथल-पुथलके द्वारा वह उस मार्ग तक पहुँचे हैं, उसमें उनका दार्शनिक मन और भावुक हृदय दोनों समान रूपसे सहायक हुए हैं—कुछ आलोचक हैं जो कहेंगे, 'सहायक' नहीं, 'वाधक' हुए हैं।

जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि 'सत्यभक्त' जी बहुत ही संवेदनाशील कवि हैं। उनकी कविता जब हृदयके भावों और मानसिक द्वंदोंके स्रोतसे प्रवाहित होती है, तो उसमें एक सहज प्रवाह और सौन्दर्य होता है। जिस प्रकार वह विचारोंको सुलझाकर मनमें बिठाते हैं और दूसरों तक पहुँचाते हैं, उसी प्रकार उनके भाव भी कविताका रूप लेनेसे पहले स्वयं सुलझ लेते हैं। उनकी समवेदनाएँ पाठकोंके हृदयको छूकर ही रहती हैं। यह उनकी रचनाकी बहुत बड़ी सफलता है। जो कविताएँ प्रचारात्मक हैं या किसी आवश्यकताको पूरा करनेके लिए लिखी गई हैं, वे इस श्रेणीमें नहीं आतीं।

'सत्यभक्त'जीने 'सत्यसन्देश' और 'संगम' नामक पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी संसारकी ही नहीं, मानव-संसारकी सेवा की है, और कर रहे हैं। उनके लेख मननीय और संग्रहणीय होते हैं। विश्वके अनेक धर्मोंका मनन, सन्तुलन और समन्वय करके 'सत्यधर्म'की प्रतिष्ठापना करना—आपने जीवनका लक्ष्य बनाया है। वर्धामें 'सत्याश्रम'की स्थापना करके अब आप वहीं रहते हैं।

उलहना

कोमल मन देना ही था तो,
क्यों इतना चैतन्य दिया ?
शिशुपर भूषण-भार लादकर,
क्यों यह निर्दय प्यार किया ?

यदि देते जड़ता, जगके दुख
नष्ट नहीं कुछ कर पाते,
त्रिविध-तापसे पीड़ित करके,
मेरी शान्ति न हर पाते।

जड़तामें क्या शान्ति न होती ?
अच्छा है, जड़ता पाता,
किसका लेना, किसका देना,
वीतराग-सा बन जाता।

अपयशका भय, कर्तव्योंकी—
रहती फिर कुछ चाह नहीं,
तुम सुख देते या दुख देते,
होती कुछ परवाह नहीं।

लड़ते लोग धर्मके मदसे,
मेरा क्या आता जाता ?
दुखियोंकी आहोंसे भी यह,
हृदय नहीं जलने पाता।

विधवाओंके अश्रु न मेरी
नज़रोंमें आने पाते,
नहीं आँसुओंकी धारासे
ये कपोल धोये जाते।

'हाय, हाय' चिल्लाता जग, पर
होते कान न भारी ये,
नहीं सुखाती, नहीं जलाती,
चिन्ताकी चिनगारी ये।

जड़ होकर जड़के पूजनमें
'निज' 'पर' सब भूला रहता,
दुनियाके दुखकी चिन्ताका
बोझ हृदयपर क्यों सहता?

पर, जो हुआ, हो गया, अब क्या,
अब तो इतना ही कर दो,
मनको वज्र बना दो, उसमें
साहस और धैर्य भर दो।

'रोना' तो मैं सीख चुका हूँ,
अब कुछ 'करना' बतला दो,
इस कर्तव्य-यज्ञमें बढ़कर
हँस-हँस मरना सिखला दो।

क़ब्रके फूल

क़ब्रपर आज चढ़ाये फूल !
जब तक जीवन था तब तक क्षणभर न रहे अनुकूल ।

कण-कणको तरसाया क्षण-क्षण, मिला न अणु-भर प्यार,
अब आँखोंसे बरसाते हो मुक्ताओंकी धार ।

देह जब आज बनी है धूल ;
क़ब्रपर आज चढ़ाये फूल !

आज धूल भी अंजन-सी है नयनोंका शृंगार,
काला ही काला दिखता था तब हीरेका हार ।

कल्पतरु था तब पेड़ बबूल ;
क़ब्रपर आज चढ़ाये फूल !

विस्मृतिके सागरमें मेरी डुबा रहे थे याद,
नाम न लेते थे, कहते थे, हो न समय बर्बाद ।

मगर अब गये भूलना भूल ;
क़ब्रपर आज चढ़ाये फूल !

सदा तुम्हारे लिए किया था धन-जीवनका त्याग,
सींच-सींच करके अँसुओंसे हरा किया था बाग़ ।

मगर तब हुए फूल भी शूल ;
क़ब्रपर आज चढ़ाये फूल !

अब न क़ब्रमें आ सकती है इन फूलोंकी बास,
मुझे शान्ति देती है केवल, यही क़ब्रकी घास ।

शान्त रहने दो, जाओ भूल,
क़ब्रपर आज चढ़ाये फूल !

झरना

(१)

बहा दे छोटा-सा झरना।
प्यासा होकर सोच रहा हूँ कैसे क्या करना ?
बहा दे छोटा-सा झरना।

(२)

मरु-थल चारों ओर पड़ा है,
वालूका संसार खड़ा है,
बूँद-बूँदकी दुर्लभतामें कैसे रस भरना ?
बहा दे छोटा-सा झरना।

(३)

नयन-नीर बरसाना होगा,
मानसको भर जाना होगा,
शीतल मन्द सुगन्ध पवनसे जगत्ताप हरना।
बहा दे छोटा-सा झरना।

(४)

मेरी थोड़ी प्यास बुझा दे,
थोड़ा-सा ही झरना ला दे,
चमन बना दूँगा इस मरुको, भले पड़े मरना।
बहा दे छोटा-सा झरना।

पंडित नाथूराम डोंगरीय

पंडित नाथूरामजी डोंगरीय समाजके सुपरिचित लेखकों और कवियोंमें अपना विशेष स्थान रखते हैं। आपके लेख अनेक जैन और जैनेतर पत्रोंमें छपते रहते हैं जो विषय, भाषा और भावकी दृष्टिसे पठनीय होते हैं।

इन्होंने हाल हीमें एक पुस्तक लिखी है "जैनधर्म", जिसमें जैनधर्मके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका सरल और प्रभावपूर्ण भाषामें प्रतिपादन किया है। आपने 'भक्तामर स्तोत्र'का पद्यानुवाद रुबाइयोंकी छन्द-शैलीमें किया है, जो प्रकाशित हो चुका है।

आपकी कविताएँ विचार और भावकी दृष्टिसे अच्छी होती हैं।

मानव मन

विश्व - रंगभूमें अदृश्य रह
बनकर योगिराज-सा मौन,
मानव-जीवनके अभिनयका
संचालन करता है कौन ?

किसके इंगितपर संसृतिमें
ये जन मारे फिरते हैं,
मृग-तृष्णामें शान्ति-सुधाकी
भ्रान्त कल्पना करते हैं।

आशा और निराशाओंकी धारा कहाँ बहा करती ;
अभिलाषाएँ कहाँ निरन्तर नवक्रीड़ा करती रहतीं ?

क्षण भंगुर यौवन-श्रीपर यह
इतराता है इतना कौन,
रूप-राशिपर मोहित होकर
शिशु-सम मचला करता कौन?

विन पग विश्व विपिनमें करता
अरे कौन स्वच्छन्द विहार;
वन सम्राट्, राज्य विन किसने
कर रक्खा सवपर अधिकार?

रोकर कभी विहँसता है तो फिर चिन्तित हो जाता है;
भाव-भङ्गिके नित गिरगिट-सम नाना रंग वदलता है।

चित्र विचित्र वनाया करता
विन रँग ही रह अन्तर्धान,
किसने चित्र कलाका ऐसा
पाया है अनुपम वरदान?

प्रिय मन, तेरी ही रहस्यमय
यह सव अजव कहानी है,
कर सकता जगतीपर केवल,
मन, तू ही मनमानी है।

किन्तु वासनारत रहता ज्यों, त्यों यदि प्रभु चरणोंमें प्यार,
करता, तो अव तक हो जाता भव-सागरसे वेड़ा पार।

श्री सूर्यभानु डाँगी, 'भास्कर'

डाँगी सूर्यभानुजी, बड़ी सादड़ी (मेवाड़)के रहनेवाले हैं। लगभग १०-१२ वर्षसे कविताएँ लिख रहे हैं जो प्रायः पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं। आप पं० दरबारीलालजी 'सत्यभक्त'के सहयोगी हैं, और अपनी रचनाओंमें सत्यधर्मके सिद्धान्तोंका प्ररूपण करते हैं—जो धार्मिक कविताके लिए सदासे ही उपयुक्त विषय रहे हैं। आपकी कविताएँ बहुत सरस, भावपूर्ण और सङ्गीतमय होती हैं।

विनय

मम हृदय-कमल विकसित कर रे,
यह विनय विमल उरमें धर रे!

दिनकर बनकर सघन गगनपर,
रुचिकर मनहर अरुण वरण भर,
अन्तरमें छिपकर अन्तरतर,
चमक अचंचल चिरस्थिर रे।
मम हृदय-कमल विकसित कर रे।

स्नेह-सुधाका स्रोत वहा दे,
शिव-सुखमय सुषमा सरसा दे,
लोल ललित लहरी लहरा दे,
विप्लवमय जीवन भर रे।
मम हृदय-कमल विकसित कर रे।

शत्रु-मित्रपर एक भावना,
त्रिभुवनकी कल्याण कामना,
'सूर्यभानु' की यही प्रार्थना,
वितरित करना घर-घर रे।
मम हृदय-कमल विकसित कर रे।

संसार

अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा संसार।

अणु-अणु परिवर्तित है प्रति पल
इसीलिए कहलाता चंचल

सत्त्व रूपसे अचल, विमल है नित्यानित्य विचार ;
अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा संसार ।

अभी जन्म है, अभी मरण है
अभी त्रास है, अभी शरण है !

धूप-छाँह सम, हांस-अश्रुमय जीवनका संचार ;
अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा संसार।

अभी वाल है, अभी युवा है
अभी वृद्ध है, अभी मुवा है

कैसा रे परिवर्तनमय है यह निष्ठुर व्यापार ;
अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा संसार।

यहाँ कहाँ रे शान्ति चिरन्तन
कर्म-दलोंका निविड़ निवन्धन

'सूर्यभानु' है संग निरन्तर सृजन और संहार ;
अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा संसार।

श्री दद्दूलाल

आप अमरावतीके निवासी हैं; वयोवृद्ध हैं। अमरावती (बरार), जहाँकी खास भाषा मरहठी है और जहाँपर एक भी हिन्दी स्कूल नहीं था, वहाँ आपने प्रयत्न करके अनेक हिन्दी-स्कूल खुलवाये हैं। आप हेड-मास्टर थे और अब अवकाश ले लिया है।

आपकी कविताएँ जैन-पत्रोंमें प्रकाशित होती रहती हैं। आप अपनी रचनाओंमें पारमार्थिक भावोंका बड़ी सुन्दरतासे आधुनिक शैलीमें दिग्दर्शन कराते हैं।

मनकी बातें

चिर दहता है चिन्तानलमें,
दुख-सागरमें गोते खाता;
इसकी साध न पूरी होती,
रह-रहकर फिर-फिर अकुलाता।१

व्यथित हृदयकी मर्म-वेदना
सन्तापोंकी ज्वाल जलाती;
खींच-खींचकर स्वरलहरीको
उर-तन्त्रीके तार बजाती।२

समझ-समझ पीड़ाको क्रीड़ा
हो उन्मत्त उसे अपनाया;
कंटक-पथपर चलकर, रे मन,
खोया बहुत न कुछ भी पाया।३

पागल परिचयसे वञ्चित हो,
तड़प-तड़पकर सही व्यथाएँ ;
जगदङ्गनमें गूँज रही क्यों
चिर विषादकी करुण कथाएँ ?४

अन्तस्तलमें अस्थिरता भर
कैसा मोहक जाल बिछाता ;
फँसते भव-बन्धनमें प्राणी,
ज्ञानी खगपति भी चकराता ।५

तृप्त न होता रञ्चमात्रको,
तीन लोककी माया पाई ;
व्याकुल चिन्तित होता मानव,
जिसने अपनी चिता सजाई ।६

हो मदान्ध तृष्णामें बर्वर
मानवतामें आग लगाती ;
विषम वृत्तियाँ मनकी सारी
उथल-पुथलकर धूम मचातीं ।७

चंचल है तन, चंचल जीवन,
चंचल इन्द्रिय-सुखकी घातें ;
चंचलता तज, वन वैरागी,
हैं विचित्र सब मनकी बातें ।८

पथिक

भूले पथिक, कहाँ फिरते हो ?
थिर हो बैठ, हृदयमें सोचो, अमित कालसे क्या करते हो ?

मार्ग विपर्यय है यह तेरा,
अनय असुरने किया अँधेरा,
विषय-व्यालने तुझको घेरा,

ज्ञान-प्रकाश जगा जीवनमें,
जनम-मरण दुख क्यों भरते हो ?

करण-कंटकाकीर्ण विजनमें,
मनोवृत्तियोंके भव-वनमें,
राग-द्वेषके शल्य-सदनमें,

मायाके फफंन्द जालमें
जान-बूझ क्यों पग धरते हो ?

तेरा है जगसे क्या नाता,
सोच, अरे, क्यों भूला जाता,
काम-क्रोध-मद क्यों अपनाता ?

कुटिल कालके चंगुलमें फँस,
अन्ध-कूपमें क्यों गिरते हो ?
भूले पथिक, कहाँ फिरते हो ?

पंडित शोभाचन्द भारिल्ल, न्यायतीर्थ

श्री शोभाचन्द भारिल्ल, न्यायतीर्थ, संस्कृत-हिन्दीके विद्वान् हैं। आप जैन-गुरुकुल ब्यावरमें अध्यापक हैं। बहुत अरसेसे लेख और कविताएँ लिख रहे हैं जिनका धार्मिक जगत्में पर्याप्त आदर है।

आपने अपने बड़े भाई श्री रामरतन नायकके 'असामयिक वियोगके तीव्रतर सन्तापकी उपशान्तिके लिए'—'भावना' नामक कविता लिखी है, जो प्रकाशित है। संस्कृत 'रत्नाकरपच्चीसी'का हिन्दी पद्यानुवाद भी ब्यावरसे प्रकाशित हुआ है। आपकी कविताएँ आध्यात्मिक और तत्त्वदृष्टिसे हृदयग्राही होती हैं।

अन्यत्व

(१)

पहले था मैं कौन, कहाँसे आज यहाँ आया हूँ;
किस-किसका संबंध अनोखा तजकर क्या लाया हूँ?
जननी-जनक अन्य हैं पाये इस जीवनकी बेला;
पुत्र अन्य हैं, पौत्र अन्य हैं, अन्य गुरू हैं चेला।

(२)

पूर्व भवोंमें जिस कायाको बड़े यत्नसे पाला;
जिसकी शोभा बढ़ा रही थी माणिक-मुक्ता-माला।
वह कण-कण बन भूमंडलमें कहीं समाई भाई;
इसी तरह मिटनेवाली यह नूतन काया पाई।

(३)

शैशव अन्य, अन्य यौवन है, है वृद्धत्व निराला ;
सारा ही संसार सिनेमाकेसे दृश्योंवाला ।
इन भंगुर भावोंसे न्यारा ज्योति-पुंज चेतन है ;
मूर्ति-रहित चैतन्य-ज्ञानमय, निश्चेतन यह तन है ।

(४)

मैं हूँ सबसे भिन्न, अन्य अस्पृष्ट निराला ;
आतमीय-सुख-सागरमें नित रमनेवाला ।
सब संयोगज भाव दे रहे मुझको धोखा ;
हाय, न जाना मैंने अपना रूप अनोखा ।

आज और कल

जो है आज जरा-सा छोटा,
चंचल उद्धत और छिछोरा,
कल वह होगा वृद्ध सयाना,
बूढ़ोंका भी बूढ़ा नाना ।१

छोटी-सी अधखिली कली है,
दिखनेमें अत्यन्त भली है,
कल वह सुन्दर सुमन बनेगी,
शाखासे गिर, धूल सनेगी ।२

अभी लोक आलोक भरा है,
दिखती रससे भरी धरा है,
हा, फिर घोर अँधेरा होगा,
पहनेगा जग काला चोगा।३

जो हैं आज द्रव्य-मदमाते,
डग-भर दूर न चलकर जाते,
कल वे भीख माँगने आते,
तो भी उदर न हैं भर पाते।४

आज वसन्त यहाँ है छाया,
बिखरी है निसर्गकी माया,
कल, हा, ग्रीष्म-ताप आयेगा,
सब सौन्दर्य विला जायेगा।५

कैसा, हाय, काल-नर्त्तन है,
जगका कैसा परिवर्तन है,
माथा मारा, समझ न पाया,
चिन्तामें निशि-दिवस विताया।६

हम भी कभी शून्य होयेंगे,
यह अस्तित्व सभी खोयेंगे,
ऊँचे चढ़े अधः गिरनेको,
पैदा हुए, हाय, मरनेको!७

४

अभिलाषा

विपदाओंके गिरि गिर सिरपर
टूट पड़ें, पड़ जावें ;
मेरे नियत मार्गमें शतशः
विघ्न अड़ें, अड़ जावें ।

एक ओर संसार दूसरी ओर अकेला होऊँ ;
पर निराश साहस-विहीन हो कोने बैठ न रोऊँ ।

हो दरिद्रता, पर न दीनता
पास फटकने पावे ;
हो कुवेर चेरा पर, मेरा,
मनमें गर्व न आवे ।

सुरगुरु और शारदा जैसा शिष्य-वृन्द हो मेरा ;
तो विरक्त हो समझूँ दुनिया चिड़िया रैन-बसेरा ।

रहूँ निरक्षर किन्तु निरन्तर,
शील सखा हो मेरा ;
समताके अगाध वारिधिमें
डूबे 'तेरा' - 'मेरा' ।

राग-रंगसे हृत्-पट मेरा रंजित भले बना हो ;
पर, सबपर हो राग एक-सा, थोड़ा औ' न घना हो ।

श्री रामस्वरूप 'भारतीय'

'भारतीय'जी समाजके पुराने लेखकोंमेंसे हैं। प्रायः १० वर्ष पूर्व इनकी रचनाएँ 'देवेन्द्र'में तथा अन्य जैन और जैनेतर पत्र-पत्रिकाओंमें निकला करती थीं। ये कर्मशील व्यक्ति हैं। इनमें समाज-सेवा और देश-सेवाकी लगन है; विचार भी मँजे हुए और उदार हैं।

आपकी कविताएँ ओजपूर्ण और शिक्षाप्रद होती हैं। भाषामें प्रवाह है, और भावोंमें स्पष्टता। आपकी एक कविता-पुस्तक 'वीर पताका' बहुत पहले श्री 'महेन्द्र'जीने प्रकाशित कराई थी। आप उर्दूके भी अच्छे लेखक हैं। उर्दूकी पुस्तक 'पैग़ामे हमदर्दी' आप हीने लिखी है।

अगस्त आंदोलनमें भारत-रक्षा-क़ानूनके आधीन जेल-यात्रा कर आये हैं। जेलमें इन्होंने अनेक कविताएँ और संस्मरण लिखे हैं।

समाधान

भिन्न-भिन्न सुमनोंमें समान गन्ध न होगी,
भिन्न-भिन्न हृदयोंमें एक उमंग न होगी;
कोटि यत्न हों मत-विभिन्नता वन्द न होगी,
शान्ति न होगी हीन बुद्धि यदि मन्द न होगी।

सबके मनमें शक्ति है तर्क स्वतन्त्र विचारकी;
सबको चिन्ता है लगी अपने शुभ उद्धारकी।

कुछ ऐसे हैं जिन्हें जगतसे परम प्यार है,
प्राच्य कीर्ति है इष्ट, पुण्य श्रद्धा अपार है;
कुछ ऐसे हैं जिनपर युगका रँग सवार है,
मनमें साहस है, उमंग है, जाति प्यार है।

प्रथम जातिमें ही करें निज आचार-प्रचारको ;
द्वितीय, जातिमें दें गुँजा वीणाकी झंकारको।
लाख बुरे हैं, पर अच्छे हैं अपने ही हैं,
इन भावोंके विना सफलता सपने ही हैं ;
सबके प्रकटित भाव आँचपर तपते ही हैं,
अभिमत मिलता नहीं, न चिन्ता, अपने ही हैं।
जब तक यों जातीयताका न चढ़ेगा रंग दृढ़ ;
हो न सकेगा तब तलक विजय विघ्नका सुदृढ़ गढ़।

धर्म-तत्त्व

वही राम मन्दिर कहलाता जहाँ विराजे हैं भगवान ;
क्या करीमके मसकनको मसजिद न मानती है क़ुरआन ?
धन्य भाग्य हैं, मनमें मन्दिर, दिलमें है मसजिद प्यारी ;
प्रकृति देविने पुण्य-भावनासे की जिसकी तैयारी।
नरने चूना गारा पत्थरसे कुछ भवन बनाये हैं ;
भव्य भावनाकी अंजलि देकर भगवान बुलाये हैं।
नर-निर्मित मन्दिर मस्जिद स्मृतियाँ हैं मन मन्दिरकी ;
बाह्य क्रिया है साधन, वीणा गूँज उठे अभ्यन्तरकी।
पण्डित-मुल्ले भोली-भाली जनताको बहकाते हैं ;
नर-नारायण, मन्दिर-मसजिदके मिस प्राण गँवाते हैं।
अनिल अनलसे बढ़कर दावानल बनती है, दूषण है ;
क्षमा क्षमाशीलोंका गुण है, धर्म मर्म है, भूषण है।
बीमारीकी तहमें व्यापी बहुमतकी बीमारी है ;
प्रपंचियोंका बल प्रचंड है, भले जनोंकी ख्वारी है।

बाबू अयोध्याप्रसाद गोयलीय

जैन समाजमें बहुत थोड़े लोग ऐसे हैं जो बा० अयोध्याप्रसादजी गोयलीयको पहलेसे ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें न जानते हों।

गोयलीयजी आज २० वर्षसे जैन-समाज और जैन-साहित्यकी गतिविधिमें सक्रिय भाग ले रहे हैं। उनके सीनेकी आग आज भी उसी तरह गरम है। समाज, देश, धर्म और साहित्यसेवाकी दीवानगी आज भी २० वर्ष पहलेकी तरह बदस्तूर क़ायम है।

अपनी सहज कुशाग्र-बुद्धि, अध्यवसाय और अनुशीलनके द्वारा उन्होंने न्याय, धर्मशास्त्र, इतिहास, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत साहित्यमें अच्छी गति प्राप्त की है। कथा, कहानी, कविता, नाटक, निबन्ध और प्रचारात्मक साहित्यके वे स्रष्टा हैं। 'दास' उपनामसे लिखी हुई उनकी हिन्दी और उर्दूकी कविताओंका संग्रह प्रकाशित हो चुका है। और जैन इतिहास, विशेषकर मौर्यकालीन इतिहासके तो वे प्रामाणिक विद्वान् हैं। उर्दू शायरीसे इन्हें ख़ास दिलचस्पी है।

सामाजिक जागृतिके क्षेत्रमें उन्होंने कार्यकर्ताओंको जोशीले गाने और उत्साहप्रद कविताएँ तथा युवकोंकी भावनाओंको सिंहनादका स्वर दिया। उनकी एक जोशीली कविताके चन्द शेर मुलाहज़ा हों।

जवानोंका जोश

हम वो हैं मर्द कि मैदान न छोड़ेंगे कभी।
मुँहसे जो कह चुके मुँह उससे न मोड़ेंगे कभी॥
तीरसे, तेग़से खंजरसे, कहीं डरते हैं ?
क़स्द[1] जिस बातका कर लेते हैं वोह करते हैं॥
आज जो हमसे ज़ियादा हैं वोह कल कम होंगे।
जब कमर बाँधके उट्ठेंगे, हम ही हम होंगे॥
नेक और बदमें है क्या फ़र्क़ बतानेवाले।
जो हैं गुमराह[2] उन्हें राह पै लानेवाले॥
बेख़बर जो थे उन्हें हमने ख़बरदार किया।
ख़्वाबे ग़फ़लत[3] से हरइक शख़्सको हुश्यार किया॥
यह तो दावे हैं, मगर वक़्ते अमल[4] जब आए।
घरसे बाहर न कोई आए न मुँह दिखलाए॥
ख़ौफ़से बेद[5] की मानिन्द बदन थर्राए।
कामकी जिससे कहो वोह ये ज़बाँ पै लाए॥
जानसे बढ़के है, मज़हबसे मोहब्बत हमको।
क्या करें ? कामसे मिलती नहीं फ़ुरसत हमको॥
लोग क्या कहते हैं ? मुतलक़[6] उन्हें अहसास[7] नहीं।
आबरू, धर्म, दयाका भी ज़रा पास नहीं॥
जिससे तस्वीरकी शोभा बढ़े वोह रंग बनो।
दिलमें ग़ैरत है अगर 'दास' तो अकलंक बनो॥

---

[1] प्रण। [2] भूला भटका। [3] स्वप्न। [4] काम करनेका समय। [5] बेंत। [6] कुछ। [7] लगाव।

बाबू अजितप्रसाद, एम० ए०, एल-एल० बी०

बाबू अजितप्रसादजीका जन्म सन् १८७४में हुआ। आपने सन् १८९५में एम० ए०, एल-एल० बी०की उपाधि प्राप्त करके वकालत प्रारम्भ की थी। आप कई वर्षों तक सरकारी वकील और बादमें बीकानेर हाईकोर्टके जज रह चुके हैं।

आप स्याद्वादमहाविद्यालय, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, सुमेरचन्द जैन होस्टेल, जैनसिद्धान्त-भवन और दिगम्बर जैन-परिषद्के संस्थापनमें उत्साही पदाधिकारीके रूपमें सम्मिलित रहे हैं।

आप सन् १९१२ से अंग्रेजी 'जैनगजट'के सम्पादक और सन् १९२६ से 'सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस,' लखनऊके सञ्चालक हैं, जहाँसे अंग्रेजीमें ११ सिद्धान्त ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री अजितप्रसादजी कविरूपसे विख्यात नहीं हैं। विशेष अवसरोंपर मित्रोंके अनुरोधसे, खासकर उर्दूमें, कुछ लिख देते हैं। लेकिन जो कुछ लिखते हैं उसमें कुछ पद-लालित्य और विशेष अर्थ गम्भीरता होती है। आपने प्रायः सेहरे लिखे हैं।

उनकी उर्दू-हिन्दी मिश्रित एक धार्मिक रचनाके कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं। दूसरी कविता 'यह बहार' उर्दू-शैलीकी सुन्दर रचना है, जो एक सेहरेका अंश है।

धर्मका मर्म

(इस कविताकी बहर उर्दूके वजनपर है)

भगवन ! मुझे रास्ता बता दे,
ज्योति टुक ज्ञानकी दिखा दे,
चिरकालसे बुद्धिपर है परदा—
जल्दी गुरुदेव वह हटा दे।
कर्मोंने किया ख़राब-ख़स्ता,
चरणोंमें पड़ा हूँ दस्तबस्ता,
वेख़ुद मैं ख़ुदीमें हो रहा हूँ,
परमात्मा हूँ पै सो रहा हूँ।
इस नींदकी आदि तो नहीं है,
पर अन्त है इसका यह सही है,
पत्थरमें छिपी है आत्म-ज्योति,
पाषाणसे अग्नि पैदा होती।
फूलोंमें खिली है आत्म ज्योति,
वृक्षोंमें फली है आत्म ज्योति,
अज्ञानका वस पड़ा है ताला,
ज्ञानीने है उसे तोड़ डाला।
चारित्रसे रास्ता सुगम है,
चलना न बहुत है, बल्कि कम है,
आगमने जो मुझको सिखाया,
है मैंने यहाँ वह कह सुनाया।
गुरुदेवसे जो मिला है परसाद,
देता है वही 'अज़ित परसाद'।

वह बहार

[सेहरेका एक अंश]

फ़स्ल-ए-वहार आती है हर साल नित नई !
दिखलाती है वहार वह हर साल नित नई ।।
पर अबकी सालकी तो अनोखी ही शान है ।
देखी कभी न पहले वह अव आन वान है ।।
जाड़ेने खूव लुत्फ़ दिखाया था ठंडका ।
अकड़ा था ऐसा न था ठिकाना घमण्डका ।।
अंग्रेज़ा किटकिटा रहा वत थर थरा रहा ।
पारा सुकड़के तीससे नीचे था आ रहा ।।
अंगारा राखमें था मुँह अपना छिपा रहा ।
चेहरे पै आफ़तावके परदा-सा छा रहा ।।
आते ही वस वसन्तके नक़्शा वदल गया ।
वस अन्त जाड़ेका हुआ उसका अमल गया ।।
आँखोंमें सबकी रंग समाया वसन्तका ।
साफ़ा वसन्ती और दुपट्टा वसन्तका ।।

× × ×

दूल्हा दुल्हनकी जोड़ी विधाताने जोड़ी है ।
दोनों हैं वे-मिसाल क्या यह वात थोड़ी है ।।
जव तक ज़मीं फ़लक रहे जोड़ी वनी रहे ।
वन्ने वनीमें खूव मोहव्वत वनी रहे ।।

(एक विवाहोत्सवपर पठित)

श्री कामताप्रसाद जैन

श्री कामताप्रसादजीका जन्म सन् १९०१ में सीमाप्रान्तके प्रमुख नगर कैम्पबेलपुर (छावनी) में हुआ था। आपके पिता श्री ला० प्रागदासजी वहाँ सरकारी फ़ौजमें ख़जांची थे। वैसे वह अलीगंज, ज़िला एटाके रहनेवाले हैं। यद्यपि आपका बाल्यजीवन पेशावर, मेरठ और हैदराबाद सिंधमें बीता, और आपका अध्ययन मैट्रिक तक ही हो सका; परन्तु आपमें ज्ञानपिपासा और धर्म-जिज्ञासा जन्मजात हैं, जिनके कारण आपका ज्ञान और अनुभव उल्लेखनीय है। आप जैन इतिहास और तुलनात्मक-धर्मके प्रामाणिक विद्वान् और सुलेखक हैं। आपकी विद्यापटुता और बहु-श्रुत-ज्ञान को लक्ष्य करके "जैन एकेडेमी ऑव विज़डम ऐंड कलचर" करांचीने "डॉक्टर ऑव लॉ"की सम्माननीय उपाधिसे आपको अलंकृत किया था। आपका साहित्यिक जीवन स्व० श्री ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी प्रेरणाका सुफल है। आपने 'भगवान महावीर' नामक पुस्तककी रचनासे प्रारम्भ करके अब तक लगभग ३०-४० पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दी और अंग्रेजीके सामयिक-साहित्य-सिरजनमें भी आप सतत उद्योगी रहते हैं। आपने "जैन इतिहास"को पाँच भागोंमें लिखा है, जिसमें ३ भाग "संक्षिप्त जैन इतिहास"के नामसे 'श्री दि० जैन पुस्तकालय', सूरत द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। अभी हालमें आपका 'हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास' नामक वृहद् निबन्ध 'श्री भारतीय विद्याभवन', बम्बई द्वारा चालित अखिल भारतीय सांस्कृतिक निबन्ध प्रतियोगितामें पुरस्कृत हो चुका है—उसपर आपको रजतपदक प्राप्त हुआ है। यह सुन्दर रचना भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हो रही है। 'भ० महावीरकी शिक्षाएँ' नामक निबन्धपर आपको "यशोविजय ग्रन्थमाला, भावनगर"से सुवर्णपदक प्राप्त हो चुका है।

आपकी अन्य रचनाएँ भी पुरस्कृत हुई हैं। आपकी एक विशेषता रही है कि साहित्यरचना करना आपके निकट एक धर्म-कृत्य मात्र रहा है। आपकी पुस्तकोंका अनुवाद गुजराती, मराठी और कनड़ी भाषाओंमें हो चुका है। अंग्रेजीमें भी आपने दो-तीन पुस्तकें लिखी हैं। आप "जैन सिद्धान्त-भास्कर"के सम्पादक हैं और भा० दि० जैन-परिषद्के मुख पत्र 'वीर'का तो उसके जन्मकालसे ही सम्पादन कर रहे हैं। आपका ारा समय सार्वजनिक कार्योंमें ही प्रायः बीतता है। अलीगंजमें आप राजमान्य ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट और असिस्टेंट कलक्टर भी हैं। अनेक सभा-समितियोंके सभासद और मन्त्री भी हैं।

श्री कामताप्रसादजी 'कवि'की अपेक्षा कविताको प्रेरणा देनेवाले साहित्यिक अधिक हैं। आपने 'वीर' द्वारा अनेक लेखकों और कवियोंको प्रोत्साहन दिया है। आपने कविताबद्ध कम्पिला तीर्थकी पूजा और जैनकथाएँ भी लिखी हैं। इन्होंने 'बृहद् स्वयंभूस्तोत्र'का पद्यानुवाद किया है।

वीर-प्रोत्साहन

अब उठो, उठो हे तरुण वीर,
कर दो जगको तुम अभय वीर !

वह देखो, नव ऋतुराज साज, नव तरु विकसित पल्लव पराग ;
जीवन-जागृति-ज्योती-अपार, चमके अब जगके द्वार द्वार !

अब जगो, जगो तुम धीर वीर !

प्राची दिशके तुम तेज राशि, भर दो जगमें तुम नव प्रकाश ;
कर दो दुख वर्बरता विनाश, थिरके ज्यों घट-घटमें हुलास।

अब बढ़ो, बढ़ो साहस गँभीर !

हे वीर-भूमिकी सुसन्तान, हे चन्द्रगुप्त-गौरव-वितान ;
राणा प्रतापकी अतुल शान, बन जाओ अब तुम विश्व-त्राण।

अब हरो, हरो दुख दर्द पीर !

कर दृढ़ असि गहकर करुण वार, निर्वैर युद्ध कर क्षमाधार ;
आ गया शत्रु, अब देख द्वार, प्रलयंकर मद कर क्षार-क्षार।

अब चलो, चलो तुम रण सुधीर ;
अब उठो- उठो हे तरुण वीर !

जीवनकी झांकी

जीवनकी है अकथ कहानी ;
है किन देखी; है किन जानी ?

मधुर-मधुर अरु विषम-विषम-सी
सरस - विरस अरु सुखद-दुखद भी ;
सित-तम-पक्ष विलोके ना जी ,
निरखे नित ही वह मनमानी ;

किन यह जानी प्रकृति निशानी ?
किन यह जानी, किन यह मानी ??

नभमें तारा झिलमिल चमके ;
चातक चन्द्र चाँदनी मोहे ,
रवि शिशु उषा-अंकमें सोहे ,
गंगकी धार वहे नित पानी !

किन यह ध्रुवलीला पहिचानी ?
किन है जानी, किन है मानी ??

जल-वुद-वुद-सम विभव प्याली ;
क्यों पीवे तू यह मतवाली ?
सुध न रहे वुध पिय विसरावे !
विरह विपथ चहुँ गति अकुलानी !!

किन यह जानी ! भेद विज्ञानी !
किन है ठानी, किन है मानी ?

रति-रस-रच रसना मतवाली,
मधुवृज पगी तृषा न शमी री ;
यम प्रहार छूटी वह सारी,
केवल रह गया चित् विज्ञानी !

किन यह भेद-दशा पहिचानी ?
किन यह जानी, किन यह मानी ??

दृग-ज्ञान-चरण समता धर वे !
वीर-विजय-घन ममता हर वे !!
चतुर विवेकी नर वे ज्ञानी !
जिन यह देखी, जिन यह जानी !!

उन सम नहिं है और विज्ञानी !
उनने जानी, उनने मानी !!

जीवनकी है अकथ कहानी !

पंडित परमेष्ठीदास 'न्यायतीर्थ'

आप जैन-समाजके युवक-हृदय गम्भीर विद्वानोंमेंसे हैं। आपने जैन-दर्शन और जैन-साहित्यके मननके साथ-साथ हिन्दी भाषाके प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यका अच्छा अध्ययन किया है। आपकी प्रतिभा समालोचनाके क्षेत्रमें विशेष रूपसे सजग और सफल है। आपने जैन-शास्त्रोंका मौलिक दृष्टिकोणसे अध्ययन किया है, और निर्भीकतासे उसका प्रतिपादन किया है। इनके विचार उग्र हैं; और जीवन सदा कर्तव्य-रत। समाज-सुधार और देशोन्नतिके लिए आप और आपकी धर्मपत्नी सौ० कमलादेवी 'राष्ट्रभाषा-कोविद', जो हिन्दीकी सुकवियित्री भी हैं, अपना जीवन अर्पण किये हुए हैं। यह दम्पति स्वदेश-आन्दोलनमें जेल-यात्रा कर आया है।

आपकी लिखी हुई पुस्तकों--'विजातीय विवाह मीमांसा', 'सुधर्म-श्रावकाचार समीक्षा', 'दान-विचार समीक्षा' और 'जैनधर्मकी उदारता', आदि--ने अनेक विषयोंपर मौलिक प्रकाश डालकर समाजके विद्वानोंको नये चिन्तन और मननकी सामग्री दी है। आप जैनधर्मको ऐसे व्यापक रूपमें देखते हैं और उसे युक्ति तथा आगमसे इस प्रकार प्रमाणित करते हैं कि उसका भगवान् महावीर द्वारा मानव-धर्मके रूपमें प्रतिपादन या प्रतिष्ठापन स्वतःसिद्ध प्रतीत होने लगता है।

आपका एक कविता-संग्रह 'परमेष्ठी-पद्यावलि' नामसे छपा है। आपकी रचनाएँ जनता और वर्गमें धार्मिक भावनाएँ और सामाजिक सुधार प्रोत्साहित करनेके लिए अच्छा साधन बनी हैं। साहित्यिक मूल्यकी अपेक्षा उनका सामाजिक मूल्य अधिक है।

महावीर-सन्देश

धर्म वही जो सब जीवोंको भवसे पार लगाता हो ;
कलह द्वेष मात्सर्य भावको कोसों दूर भगाता हो ।

जो सबको स्वतन्त्र होनेका सच्चा मार्ग बताता हो ;
जिसका आश्रय लेकर प्राणी सुख समृद्धिको पाता हो ।

जहाँ वर्णसे सदाचारपर अधिक दिया जाता हो ज़ोर ;
तर जाते हों जिसके कारण यमपालादिक अंजन चोर ।

जहाँ जातिका गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान ;
वही धर्म है मनुज मात्रका हों जिसमें अधिकार समान ।

नर नारी पशु पक्षीका हित जिसमें सोचा जाता हो ;
दीन हीन पतितोंको भी जो हर्ष सहित अपनाता हो ।

ऐसे व्यापक जैन धर्मसे परिचित हो सारा संसार ;
धर्म अशुद्ध नहीं होता है, खुला रहे यदि इसका द्वार ।

धर्म पतित पावन है अपना, निश दिन ऐसा गाते हो ;
किन्तु बड़ा आश्चर्य आप फिर क्यों इतना सकुचाते हो ।

प्रेम भाव जगमें फैला दो, करो सत्यका नित व्यवहार ;
दुरभिमानको त्याग अहिंसक बनो यही जीवनका सार ।

बन उदार अब त्याग धर्म फैला दो अपना देश विदेश ;
"दास" इसे तुम भूल न जाना, है यह महावीर-सन्देश ।

प्रगति प्रेरक

श्री कल्याणकुमार 'शशि'

कविताके नये युगमें जिन कवि-हृदयोंने समाजमें प्रगतिको प्रेरणा दी, उनमें युवक कवि श्री कल्याणकुमारजी 'शशि' निःसन्देह प्रधान हैं। आज लगभग १५ वर्षसे 'शशि'जी काव्य-साधना कर रहे हैं; और उनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकासकी ओर उन्मुख है। उन्हें आप कोई-सा विषय दे दीजिए, वह अपनी भावुक कल्पना-द्वारा सहज काव्य-सृष्टि करके उस विषयको चमका देंगे। कविका कार्य समाजके जीवनमें प्रवेश करके उसको साथ लेकर, उसे आगे बढ़ाना होता है। 'शशि'ने उत्सवोंके लिए धार्मिक पद रचे, झंडेके लिए गीत बनाये, महापुरुषोंकी जीवनियोंपर भावपूर्ण कविताएँ लिखीं और समाजके नये भावोंको नई वाणी दी।

अब वह कई पग आगे बढ़ गये हैं। आज उनके गीतोंमें विश्वका आकुल अन्तर बोल रहा है। वह कल्पनाको उत्तेजित कर, अलङ्कारकी सृष्टि नहीं करते; आज तो उनका हृदय वर्त्तमानको देखकर ही भावाकुल हो उठता है। वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभाके बलपर भावोंको गीत-बद्ध कर देते हैं। हाँ, वह भाषाका लालित्य और भावोंकी सुकुमारता जागरणके वज्रघोषी गीतमें भी क़ायम रख सकते हैं।

जब हमने 'शशि'से प्रामाणिक परिचय माँगा, तो लिख भेजा—

"मेरा परिचय कुछ नहीं है। मार्च १९१२ का जन्म है। व्यापार करता हूँ—ग़रीब आदमी हूँ; बस यही!"

यह 'ग़रीब आदमी' कविताके जगत्में आज सारी समृद्ध जैन-समाजकी निधि है।

श्री कल्याणकुमार 'शशि'ने जैन-महिलाओंकी कविताओंका सुन्दर संग्रह 'पंखुरियाँ' नामसे प्रकाशित किया है। आपकी अनेक स्फुट रचनाएँ पुस्तकाकार छप चुकी हैं। आप रामपुर (रियासत)में व्यापार-कार्य करते हैं।

रणचण्डी

जागो, जगकर आज गान
हे कवि-वाणी, कुछ गाओ !

अग्नि-युद्धमें, हा, धू-धूकर मानव जलता,
छाई रोम-रोममें दुनियाके व्याकुलता,
बढ़ा आ रहा बुद्धिवाद मानवको दलता,
बहुत हुआ, अब यह भीषण-पट
परिवर्तन कर जाओ।

नाच रही है उच्छृङ्खल रक्तिम रण-चंडी,
लाल रक्तसे लथपथ वन, उपवन, पग-डंडी,
बीहड़में जयकेतु उड़ा खुश युद्ध घमंडी,
दानवताका गर्व चूरकर
इसमें मानव लाओ।

केवल मेरी सत्ताकी माया मरीचिका,
उगा रही है पग-पगपर भीषण विभीषिका,
प्यासा यह नर-यक्ष, भयंकर रक्त-नीतिका,
इसे रक्तकी जगह प्रेमका
पुण्य-पियूष पिलाओ।

विश्रुत जीवन

नई लहरने बदल दिया है
मेरा सञ्चित जीवन ;
नए रूपमें नए रंगमें
हुआ पल्लवित मधुवन ;

अभिमंडित हो उठा आज
विश्रुत जीवनका कण-कण ,
यह असिद्ध है, किस भविष्यपर
दौड़ रहा यह क्षण-क्षण ।

उर कहता है, कुछ खोया है
मन कहता है पाया ;
उद्वेलित कर रही नित्य यह
उभय पक्षकी माया ।

विश्व और, मैं और हुआ
क्या देख रहा हूँ सपना ?
अह, यह लो निमेषमें ही
सब बदल गया जग अपना ।

गीत

लय गीत मधुर, लय गीत मधुर !
हे, हे कवि, तेरी मदिर ताल,
झंकृत वीणाकी ध्वनि विशाल,
मैं सुनकर आज हुआ निहाल,
हाँ, हाँ, फिर गा दे एक वार
वह गीत प्रचुर !

सन्निहित जगतका उदय अस्त,
तेरी वह मादक ध्वनि प्रशस्त,
मेरा जंगम जग अस्त-व्यस्त,
वनकर स्वर लहरी मचल उठे
फिर वह आतुर !

हो पुनः तरंगित गीत रम्य,
अपवाद आज फिर हो अगम्य,
हो अन्त रहित यह तारतम्य,
वीहड़में कुछ लहलहा उठे
वन प्रेमांकुर !

ले मिला मिलाया सफल आज,
चिर लहरी गूँजे पुनः आज,
निर्माण नया हो स्वप्नराज,
हो आलोकित मेरा निशान्त
जग अन्तःपुर !

गायन-सी हो गुंजायमान,
छा जाये नभपर बन अम्लान,
थिरके चंचल हो सुप्त प्राण,
गत वर्तमान जोड़े भविष्यको
बन लय-सुर !

अह, छेड़ रहा है मुझे कौन !
लय भंग हो गया यदपि, तौ न
मुखरित होगा मन्दायु मौन,
रे, अभी भविष्यत् और शेष है
बन न निठुर !

बस, बन्द करो अस्थिर निनाद,
ले लो तुम यह चिर आह्लाद,
मैं लूँगा मादकता प्रसाद,
मैं अमर हुआ, गत हुआ
नाद यह क्षण-भंगुर !

जो सरस प्रेमसे रहा सींच,
उसको मेरे करसे न खींच,
अवलोक रहा हूँ नेत्र मींच,
मैं अन्तर्हित हूँ दृश्यमान
छवि म्लान मुकुर !

हाँ, अब चमका मेरे समीप,
वह प्राणमयी निर्माण दीप,
मैं हुआ अजर जगका महीप,
अब कुछ न सुनूँगा राग भंगकर
ओ सुकवि, चतुर !

शत शत शताब्दियोंका श्मशान,
हो उठा आज फिर मूर्त्तिमान,
लुट चला विश्वमें प्रेम दान,
लय खेद हुआ, गत भेद हुए
किन्नर, नर, सुर !

श्री भगवत् स्वरूप 'भगवत्'

साहित्यके आकाशमें इस नक्षत्रका उदय अभी कुछ वर्ष पहले ही हुआ है; पर आते ही इसने जनताकी दृष्टि अपनी ओर खींच ली; क्योंकि इस नक्षत्रमें अनुपम प्रकाश है, ज्वाला है और साथ ही है एक अपूर्व स्निग्धता।

'भगवत्' जी कवि हैं, कहानी-लेखक हैं और नाटककार हैं—खूबी यह कि जो कुछ लिखते हैं प्रायः बहुत ही सुन्दर होता है। आपकी कविता नितान्त आधुनिक ढंगकी है—वह युगसे उत्पन्न हुई है और युगको प्रतिध्वनित करती है। वर्त्तमान मानव-समाजका ढाँचा जिन आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तोंपर खड़ा हुआ है, वह जन-समूहके लिए निरन्तर संकट और संघर्षकी वस्तु बने हुए हैं। आपका कवि संघर्षसे जूझ रहा है। 'भगवत्' अपनी कवितामें उसी संघर्षका प्रतिनिधित्व करके हमारी सामाजिक चेतना-धाराको विश्व-व्यापी मानव-चेतनाकी महाधारासे जोड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं। वह कहते हैं:—

"कर्मक्षेत्रमें उतर रहा हूँ, लेकर यह अभिलाषा;
समझ सके संगठन शक्तिकी, जनता अब परिभाषा।"

आपकी भाषा बहुत ही स्वाभाविक होती है। नाटकोंमें आप विशेष रूपसे ऐसी भाषाका प्रयोग करते हैं जो आम लोगोंकी समझमें आ जाये।

अब तक आपकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं—

उस दिन, मानवी (कहानियाँ), संन्यासी (नाटक), चाँदनी

(कविता-संग्रह), समाजकी आग (नाटक), घूँघट (प्रहसन), घरवाली (व्यङ्ग काव्य), भाग्य (नाटक), रसभरी (कहानियाँ), आत्मतेज (स्वामी समन्तभद्र), त्रिशलानन्दन, जय महावीर, फल-फूल, झनकार, उपवन—अन्तिम पाँचों गीत हैं।

आप ऐतमादपुर (आगरा)के रहनेवाले थे; और सन् १९२४–२५से लिख रहे थे।

खेद है कि 'भगवत्जी' अपने पीछे अपनी विधवा पत्नी और तीन पुत्रियोंको विलखते छोड़कर ६ सितम्बर सन् १९४४को दिवंगत हो गये।

आपकी अब तक १९ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आत्म-प्रश्न

मैं हूँ कौन, कहाँसे आया ?
महाशोक है, मानव कहलाकर भी इतना जान न पाया।
स्वर्ण छोड़ पीतलपर रीझा,
सुधा त्याग पी लिया हलाहल ;
चला वासनाओंके पथपर,
इतना रे, भरमा अन्तस्तल।
सच्चे सुखका स्वप्न न देखा, दुखपर रहा सदा ललचाया।
अपने भले-बुरेकी मैंने,
समालोचना भी कबकी है ?
आत्मिक निर्बलता भी मुझको,
नहीं कभी मनमें अखरी है।
'जीवन' भूला रहा, मृत्युको अविवेकी होकर अपनाया !
काश, टूट जाता भीतरसे,
मोह और मायाका नाता ;
तो अपने सुख-दुखका मैं था,
उत्तर-दाता भाग्य-विधाता।
किन्तु गुलामीने है मुझको ऐसा गहरा नशा पिलाया।
एक-एक कर चले जा रहे,
दिन जीवनको हँसा रुलाकर ;
विघ्न-बादलोंमें लिपटा है,
इधर मृतक-सा ज्ञान-दिवाकर।
सूझ न पड़ता अन्धकारमें, क्या अपना है कौन पराया !
मैं हूँ कौन कहाँसे आया ?

सुख-शान्ति चाहता है मानव

पीड़ाकी गोदीमें सोया,
खेला दिलके अरमानोंसे,
विहँसा तो हाहाकारोंमें,
रूठा तो अपने प्राणोंसे।
आध्यात्मिक पथपर बढ़नेको,
अब क्रान्ति चाहता है मानव। सुख-शान्ति०
सब देख चुका नाते-रिश्ते,
अपनोंको भी देखा-परखा,
सुखके साथी सब दीख पड़े,
दुखमें न कोई बन सका सखा।
दुनियाके दुखसे दूर कहीं
एकान्त चाहता है मानव!! सुख-शान्ति०
प्रोत्साहनके दो शब्द मिले
आशीष मिले स-करुण मनकी,
प्राणोंमें जागें नये प्राण
भर दें जो लहर जागरणकी।
जीवन रहस्य समझा दें वह
दृष्टान्त चाहता है मानव। सुख-शान्ति०
जीये तो जीये ठीक तरह
मुरदापन लेकर लजे नहीं,
मानव कहलाकर दीन न हो
औ मानवताको तजे नहीं।
इसपर भी आ बनती है तब
प्राणान्त चाहता है मानव।
सुख शान्ति चाहता है मानव।

मुझे न कविता लिखना आता

मुझे न कविता लिखना आता,
जो कुछ भी लिखता हूँ उससे केवल अपना मन बहलाता।
मुझे न कविता लिखना आता॥

कवि होनेके लिए चाहिए जीवनमें कुछ लापरवाही,
घनी हो रही मेरे उरमें चिन्ताओंकी काली स्याही,
मुझ जैसे पत्थरसे है फिर क्या कोमल कविताका नाता ?
मुझे न कविता लिखना आता॥

प्रखर दृष्टि कविकी होती है प्रकृति उसे प्यारी लगती है,
पाता है आनन्द शून्यमें क्योंकि वहाँ प्रतिभा जगती है,
हाहाकारोंका मैं बन्दी क्षण-भरको भी चैन न पाता।
मुझे न कविता लिखना आता॥

धुंधले दीपकके प्रकाशमें लिखी गईं मेरी कविताएं,
क्या प्रकाश देंगी जनताको इसको जरा ध्यानमें लायें,
मैं इन सबको सोच-सोचकर मनमें हूँ निराश हो जाता।
मुझे न कविता लिखना आता॥

कविता क्या है अब तक मैंने इसे न अपने गले उतारा,
विमुख दिशाकी ओर बह रही है मेरे जीवनकी धारा,
किन्तु प्रेम कुछ कवितासे है अतः उसे जीवनमें लाता।
मुझे न कविता लिखना आता॥

एक प्रश्न

क्यों दुनिया दुखसे डरती है ?
दुखमें ऐसी क्या पीड़ा है, जो उसकी दृढ़ता हरती है ?

हैं कौन सगे, हैं कौन ग़ैर, कितने, क्या हाथ वटाते हैं,
सुखमें तो सब अपने हीं हैं, दुखमें पहचाने जाते हैं,
'अपने' 'पर'की यह बात सदा दुखमें हीं गले उतरती है,
क्यों दुनिया दुखसे डरती है ?

दुखमें ऐसा है महामन्त्र जो ला देता है सीधापन,
सारे विकार सारे विरोध तज, प्राणी करता प्रभु-सुमिरन,
हर साँस नाम प्रभुका लेती, भूले भी नहीं विसरती है,
क्यों दुनिया दुःखसे डरती है ?

दुनियावी सारे वड़े ऐव, दुखियाको नहीं सताते हैं,
सुखमें डूवे इन्सानोंको बेशक हैवान वनाते हैं,
दुख सिखलाती है मानवता, जो हित दुनियाका करती है,
क्यों दुनिया दुखसे डरती है ?

पतझड़के पीछे है वसन्त, रजनीके बाद सवेरा है,
यह अटल नियम है उद्यमके उपरान्त सदैव वसेरा है,
दुख जानेपर सुख आएगा, सुख-दुख दोनोंकी धरती है,
क्यों दुनिया दुखसे डरती है ?

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

आप अंग्रेजी और संस्कृत, दोनों विषयोंके, एम० ए० हैं। इन्हें साहित्यके प्राय: सभी युगों और क्षेत्रोंसे परिचय है और संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी उर्दू और बंगला साहित्यके आलोचनात्मक अध्ययनमें विशेष रुचि है।

इनके हिन्दी और इंग्लिशके गद्यलेख—भाषा, भाव और शैलीमें—बहुत सुन्दर होते हैं। आप जब देहली और लाहौरमें थे तो ऑल इन्डिया रेडियोसे आपके भाषण, साहित्यिक आलोचनाएँ और कविताएँ प्राय: ब्रौडकास्ट होती रहती थीं।

आपके कवि-जीवनका परिचय श्री कल्याणकुमार 'शशि'के शब्दोंमें इस प्रकार है—

"आप समाजके ही नहीं, वरन् देशके उभरते हुए उज्ज्वल नक्षत्र हैं। आप बहुत ही सरल स्वभावी और मौन प्रकृतिके जीव हैं; और पत्रोंमें नहींके बराबर लिखते हैं। इसीलिए सुदूर वनस्थलीके सुकोमल नीड़ोंमें गुंजरित होती हुई, हृदयको नचा-नचा देनेवाली कोयलकी कूक हमें सुननेको नहीं मिलती। आप अपने विषयके चित्रमें प्रतिभाकी बड़ी बारीक कूँचीसे रंग भरते हैं। आपकी कवितामें 'पन्त' जैसी कोमलताका दिग्दर्शन मिलता है। सम्भवत: किसी-किसी कवितामें तो ऐसी अनुभूति होने लगती है कि मानो इन्होंने प्रकृतिकी आत्मासे साक्षात्कार करके ही उसका वर्णन किया हो।"

पहले आप लाहौरमें भारत इन्श्योरेंस कम्पनीके पब्लिसिटी-ऑफ़िसर और अंग्रेजी पत्र 'भारत मैग्ज़ीन'के सम्पादक थे। आजकल आप डालमियानगरमें दानवीर साहू शान्तिप्रसादजीके सैक्रेटरी और डालमिया जैन ट्रस्टके मन्त्रीके पदपर हैं। आपकी धर्मपत्नी श्री कुन्थकुमारी जैन बी० ए०, (ऑनर्स) बी० टी० सुसंस्कृत और प्रतिभासम्पन्न आदर्श महिला हैं।

कोई क्या जाने, कोई क्या समझे ?

प्रेमीके प्रीति-पगे मनको
कोई क्या जाने, कोई क्या समझे !
भावुक कविके पागलपनको
कोई क्या जाने, कोई क्या समझे !
उन्मत्त हृदयकी थिरकनको,
नत-मुखके अधर प्रकम्पनको,
नयनोंके मूक निमन्त्रणको
कोई क्या जाने, कोई क्या समझे !
अति कुटिल गरलमें बुझी हुई
अति सरल, सुधासे सींची-सी
मद-भरी अनोखी चितवनको
कोई क्या जाने, कोई क्या समझे !
रे कीट, ज्योतिका इक चुम्बन,
औ' उसपर प्राणोंकी बाज़ी ?
तेरे इस आत्म-विसर्जनको
कोई क्या जाने, कोई क्या समझे !
सुख-दुखकी आँख-मिचौनीको,
नरकी होनी - अनहोनीको
इस स्वप्न-सरीखे जीवनको
कोई क्या जाने, कोई क्या समझे !

'कुहू कुहू' फिर कोयल बोली

मन्द समीरणके पंखोंपर,
बैठ, उड़े उसके आतुर स्वर,
विकल हुआ तरु-तरुपर मर्मर,
मंजरियोंके स्वप्न मधुरतर,
भंग हुए, जब शाखा डोली। 'कुहू कुहू०'

उरमें अमिट पिपासा लेकर,
घूम रहा अति आकुल-आतुर,
कली-कलीके द्वार-द्वारपर,
रीते अधरों रोता मधुकर,
गान समझती दुनिया भोली ! 'कुहू कुहू०'

छाई कूक अवनि अम्बरपर,
उठी हूक-सी, गरजा सागर,
द्रवित हुए गिरि-पाहनके उर,
निःश्वासोंसे निकले निर्झर,
विकल व्यथाने पलकें खोलीं। 'कुहू कुहू०'

उरमें किसकी याद छिपाकर,
रोती है तू कर ऊँचा स्वर,
मचल उठा क्यों मेरा अन्तर,
इन आँखोंमें पा नव निर्झर,
तूने उरकी पीड़ा घोली।
'कुहू कुहू' फिर कोयल बोली।

मैं पतझरकी सूखी डाली

चौराहेपर पाँव जमाये, भूतों-सा कंकाल बनाये,
सूखा पेड़ खड़ा मुँह वाये, जो लम्बी बाहें फैलाये,
मैं उसकी हूँ उँगली काली ;
मैं पतझरकी सूखी डाली ।

झर झरकर फल-पत्ते छूटे, लुटा रूप रस पंछी रूठे,
युग-युगके गठ-बन्धन टूटे, बिन अपराध भाग क्यों फूटे ?
सूखे तन, भूखे मनवाली,
मैं पतझरकी सूखी डाली !

फैला केश रात जब रोती, नभकी छाती धक-धक होती,
सन्नाटेमें दुनिया सोती, मैं उल्लूका बोझा ढोती,
वह गाता मैं देती ताली ;
मैं पतझरकी सूखी डाली !

जो जगकी बातोंपर जाऊँ, एक साँसमें ही मर जाऊँ,
मैं न किन्तु वह, जो डर खाऊँ, जीवनके नूतन स्वर गाऊँ,
'अजर, अमर, मैं आशावाली' ;
मैं पतझरकी सूखी डाली !

पतझर कितने दिनका भाई, सुनो, पवन सन्देशा लाई,
अम्बरपर छाई अरुणाई, लो, वसन्तकी ऊषा आई,
भूलेगा न मुझे वन-माली ;
नहीं रखेगा सूखी डाली ।

सजनि, आँसू लोगी या हास ?

नील अंचलमें छिप चुप-चाप,
वियोगी तारे तकते राह,
निराशाका पा अन्तिम ताप,
बरस जाती आँसू बन 'चाह' !

कलीकी बुझती इससे प्यास
सजनि ! आँसू अच्छे या हास ?

कनक-करसे फैला उल्लास,
झूमती मलयानिलमें झूल,
चूमती जब ऊषा सविलास—
मुस्करा उठते सोये फूल !

धरापर छा जाता मधुमास,
सजनि, कितना मादक है हास !

'मिलन' हँस हँस बिखराता फूल,
'विदा' रो पोती मोती-माल,
सुमनमें दोनोंके हैं शूल,
मुझे दोनोंपर आता प्यार !

भेट-हित दो ही निधि हैं पास,
सजनि, आँसू लोगी या हास ?

श्री शान्तिस्वरूप, 'कुसुम'

श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम'को काव्य-रचनाके लिए जन्म-जात प्रतिभा मिली है। आपका जन्म १५ अक्तूबर सन् १९२४को धनोरा (मेरठ)में हुआ। आपने हाई स्कूल तक ही शिक्षा प्राप्त की है, और आजकल सहारनपुरमें इम्पीरियल बैंकमें ख़ज़ांची हैं।

आपको हिन्दी साहित्यसे बचपनसे ही अनुराग रहा है और स्वतः स्फूर्तिसे प्रेरित होकर आपने कविता-रचना प्रारम्भ की है। थोड़े ही समयमें आपने इस दिशामें बहुत उन्नति कर ली है और भविष्यमें आप निःसन्देह हिन्दी कवि-समाजमें विशेष गौरव और आदरका स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

आपके गीतोंमें उच्च कला, सफल सौन्दर्य और अभिनव सरसताके दर्शन होते हैं। इनकी कवितामें प्रवाह होता है जो इस बातका प्रमाण है कि कविता और कविताकी शब्द-योजना हृदयके स्पन्दनसे उत्पन्न हुई है और वह निर्झरकी तरह अकृत्रिम धाराके रूपमें बह रही है।

'कुसुम'का भावुक हृदय, वेदनाके हलके-से आघातसे भी झनझना उठता है; पर, शायद वह निराशावादी नहीं हैं।

भविष्यमें प्रगतिको जो वाञ्छनीय रूप लेना है उसके प्रति कुसुम-जैसे उठते हुए कवि-कलाकारोंका विशेष उत्तरदायित्व है।

हिन्दी साहित्यको श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम'से भविष्यमें बहुत आशाएँ हैं।

कलिकाके प्रति

हो कितनी सुकुमार सलौनी, कलिके, प्रेम सनी-सी ;
अन्तरमें रँग भरे अनूठा, जीवन-ज्योति धनी-सी ।

इन मादक घड़ियोंमें अपने यौवनसे सकुचाती ;
कुछ-कुछ खिलती-सी जाती हो, अवनत नयन लजाती ।

मृदु चितवनसे आकर्षित शत-शत युवकोंने देखा ;
मधुर रँगीली-सी आँखोंमें, उन्मादक-सी रेखा ।

यौवनके स्वर्णिमसे युगमें यह कुंकुम-सी काया ;
तैर रही जीवन सागरमें बनकर मोहक माया ।

पर पङ्खुरियोंके समीपतर इन शूलोंका रहना ;
खटक रहा प्रतिपल, सुन्दरि, सचमुच ही तू सच कहना ।

इन अलियोंके मोह जालमें तनिक न तुम फँस जाना ;
लोलुप मधुके मधुर प्रेमका, केवल, सजनि, बहाना ।

इनकी प्रीति क्षणिक है, पगली, सरस देख आ जाते ;
रस रहने तक मौज उड़ाते, नीरस कर उड़ जाते ।

मैं भी कभी कली थी सुन्दर, यों ही मुसकाती थी ;
शैशवके मद भरे प्रातमें मञ्जु गीत गाती थी ।

आती मलयवायु थी मुझमें, दुख भर-भर जाती थी ;
उषा अरुणिमा देती, संध्या, दुख भर ले जाती थी ।

तब इन मधुपोंने आ मुझको मधुमय गीत सुनाया ;
प्रेम डोरके बन्धनमें कस, अपना जाल बिछाया ।

लूटी मधुमय मधुऋतु मेरी, छलनी हृदय किया है ;
इस जीवनमें सुखके बदले दुखका निलय दिया है ।

मुझपरसे अब तुमपर जा, तुमसे जा और किसीपर ;
यों ही उड़ जायेंगे हँसकर, अपनी मनमानी कर ।

निष्ठुर जगकी रीति यही है, 'सुखमें साथी' बनना ;
सुख रहने तक साथ निभाना, दुखमें छोड़ बिछुड़ना ।

यौवन-दीप बुझाकर तेरा स्वार्थ-भरे ये भौंरे ;
तुझे चिढ़ाकर झूम उठेंगे, ले-ले पवन झकोरे ।

वासन्तीकी मधु छायामें, सुमुखि, प्रेमसे झूलो ;
रस बरसाती रहो निरन्तर, मुक्त पवनमें फूलो ।

शूल तुम्हारे जीवन साथी, इनसे नेह लगाओ ;
इन काले-काले भौंरोंको, काँटे चुभा उड़ाओ ।

कुछ भी न समझ पाता हूं मैं, जगकी या मेरी ग़लती है !

मैं सुख भोगूँ या दुख भोगूँ, दुनिया क्या ज़हर उगलती है ;
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ।

मैं पन्थ पुराना छोड़ चुका, मर्यादा बन्धन तोड़ चुका ;
दुनियासे तो रिश्ता ही क्या, अपनोंसे भी मुँह मोड़ चुका ।

फिर क्रूर निगाहें रह-रहकर क्यों मेरे भाव मसलती हैं ;
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ।

अब एक निराला जीव बना, जीवनमें कहीं न उलझन है ;
मैं हूँ, मदिरा है, साक़ी है, साक़ीबालाकी रुनझुन है ।

मैं सबसे खुश हूँ दुनियाको, मेरी सत्ता क्यों खलती है ;
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ?

दो दिन हीका तो मेला है, फिर जाता पथिक अकेला है ;
यह नश्वर धन दौलत पाकर, रे ! कौन न हँस-खुश खेला है ।

यदि मैं भी हँस लूँ तो जगकी, दृष्टी क्यों रंग बदलती है ;
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ।

मैं प्रेम नगरमें रहता हूँ, सुखके सागरमें बहता हूँ ;
सबकी ही सुनता जाता हूँ, अपनी न किसीसे कहता हूँ ।

तो भी ये दुनियाकी बातें, क्यों रह-रह मुझपर ढलती हैं ;
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ।

कोई कहता तू मार्ग-भ्रष्ट, होकर पाता क्यों अमित कष्ट ;
पापोंसे रँगा हुआ पगले, तेरे जीवनका पृष्ट-पृष्ट ।

मैंने न कभी पथ पूछा फिर, इनकी क्यों जिह्वा चलती है ;
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ।

मैं विद्रोही हूँ, बाग़ी हूँ, अनुराग लिये वैरागी हूँ ;
जिसका न कभी स्वर विकृत हो, मैं ऐसा अद्भुत रागी हूँ ।

फिर मेरे निकले रागोंसे, क्यों दुनिया मुझको छलती है ;
कुछ भी न समझ पाता हूं मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ?

श्री हुकुमचन्द्र बुखारिया 'तन्मय'

'तन्मय'जी कविताके क्षेत्रमें १९४०, ४१से ही प्रकाश्य रूपमें आए हैं।

आपकी कविताएँ बड़ी ओजपूर्ण तथा विद्रोहपूर्ण होती हैं। कविता-पाठ करते समय आप श्रोताओंको मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं। उनकी आत्माएँ फड़क उठती हैं।

आप अपने परिचयमें लिखते हैं—'राष्ट्रकी गुलामीकी बात जब कभी मैं सोचता हूँ तो तिलमिला जाता हूँ। पवित्र शस्य-श्यामला और सुजला-सफला धरतीके निवासियोंको जब भूखों मरता देखता हूँ तो लेखनी विद्रोहके लिए मचल उठती है और तभी बरबस ही मेरे 'कवि'को घोषित करना पड़ता है—

'आग लिखना जानता हूँ।'

एक स्थानपर आपके कवित्वने शारदासे प्रार्थना की है—

'युग-कलाकार युग-मानवका पथ-दर्शन मुझको करने दो,
सूनी बलि-वेदीको अम्बे ! अगणित शीशोंसे भरने दो,
पाताल स्वर्गसे मिल जाए हो धरा-गगनका आलिंगन,
विद्रोह खेल खुलकर नाचे, विप्लवको आज मचलने दो—
इस जगको, माँ, तुम एक बार हो तो जाने दो क्षार-क्षार।'

'तन्मय'जी प्रलय-गीत लिखनेमें खूब सफल हुए हैं, किन्तु प्रलय-गीतोंके साथ आपने कुछ प्रणय-गीत भी लिखे हैं।

वस्तुतः 'तन्मय'जीके कवित्वने कोरी कल्पनाके पंख लगाकर अनन्तके आकाशमें उड़ान नहीं भरी है, बल्कि दृश्य जगत्के अन्तर्दाहका उसने

गम्भीरतासे संवेदन किया है और इसी संवेदनने वेगवान् होकर आपकी कविताके प्रवाहको अनेक धाराओंमें प्रस्फुटित किया है।

आपकी जन्मभूमि ललितपुर (बुन्देलखण्ड) है। ये कांग्रेसी कार्यकर्त्ता हैं और सत्याग्रह-आन्दोलनमें दो बार जेल-यात्रा कर चुके हैं।

आपसे समाज तथा साहित्यको अनेक आशाएँ हैं। इनके निम्नलिखित अप्रकाशित कविता-संग्रह हैं :—

१. अङ्गार

२. आधी-रात

३. पाकिस्तान (एक खण्ड काव्य)

आग लिखना जानता हूं !

१

कोकिलाकी मधुर कू-कू,
सुन रहा कोई निझर—झर,
स्वप्नमें लखकर सुमुखिको
भर रहा कोई विरह-स्वर।
किन्तु मैं तो भैरवी अपनी निराली तानता हूँ।
आग लिखना जानता हूँ !

२

व्यर्थ, कवि, मधु-विन्दुओंसे
गीत तू अपने सँजोता,
बाल-विधवाकी तरह
नव-जात छायावाद रोता !
जो बग़ावत फूँक दे---कविता उसे मैं मानता हूँ।
आग लिखना जानता हूँ !

३

रीझ प्रेयसिपर रहा जो
भूलकर भीषण प्रलयको,
देख भूखोंको, न रोया,
क्या कहूँ उस कवि-हृदयको ?
और वह दावा करे---'युग-धर्मको पहचानता हूँ।'
आग लिखना जानता हूँ !

४

व्यर्थ है सङ्गीत-लेखन
हो न जगती का भला जब,
यदि न दो रोटी मिलें तो
भूल जायें कवि कला सब !
--गीत रोटीके लिखूँगा--आज प्रण यह ठानता हूँ।
आग लिखना जानता हूँ !

मैं एकाकी पथ-भ्रष्ट हुआ

कुछने चौपथ तक साथ दिया,
कुछ अर्द्ध मार्गसे हुए विलग;
कुछ थके, रुके, कुछ कहीं थमे,
हो उठे सभीके भारी पग।

मैं एक निरन्तर किन्तु बढ़ा,
था आगे इस टेढ़े पथपर;
पर, हाय, हुआ मुझको भी क्या,
हो रहे चरण मेरे डगमग!

आगे क्या होगा, गति-अथ हो
जब इतना सथक, सकष्ट हुआ?
मैं एकाकी पथ भ्रष्ट हुआ।१।

पथ - भीषणता, दुर्गमताका,
जग आज दिखा मत मुझको भय;
चल पड़ा रुकूँगा अब न कहीं,
आँधी आये, हो जाय प्रलय।

पाँवोंमें काँटे चुभें, लहू,
टपके, मुझको चिन्ता न आज;
कर जाऊँगा कालालिंगन,
या लौटूँगा ले पूर्ण विजय।

इतिहास बताता काँटोंसे
जो उलझा वह उत्कृष्ट हुआ ;
मैं एकाकी पथ - भ्रष्ट हुआ ।२।

मैं पहुँच सकूँगा मंज़िल तक,
मुझको भय है, मैं हूँ हताश ;
पग-पगपर गिरता उठता हूँ,
हो रहा लुप्त रवि, शशि-प्रकाश ।

फिर पाँव पकड़कर खींच रहे,
पीछे मेरे सहगामी हीं ;
आबद्ध विविध बन्धन-द्वारा,
कर रहे, हाय, हैं सर्वनाश ।

रे, मेरी जीवन-गाथाका,
तो बन्द आख़िरी पृष्ट हुआ ।
मैं एकाकी पथ - भ्रष्ट हुआ ।३।

श्री कपूरचन्द्र, 'इन्दु'

श्री कपूरचन्द्र 'इन्दु' सम्भवतः कई वर्ष पहलेसे कविता लिख रहे हैं, किन्तु इधर हालमें ही जो उनकी कविताएँ पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं, उनसे 'इन्दु'जीकी प्रतिभाके विषयमें बहुत अच्छी धारणा बन जाती है।

आपकी कविताओंका केन्द्रवर्ती दार्शनिक भाव अभिनव शब्द-व्यंजनाके द्वारा जब व्यक्त होता है तो वह परिचित होते हुए भी अनूठा लगता है। अपने मौलिक भावके लिए वह तदनुकूल शब्द और शब्द-सङ्कलन गढ़ लेते हैं।

आपकी 'कवि-विमर्श' नामक कविता जो यहाँ दी जाती है वह आपकी शैलीका सुन्दर उदाहरण है। मधु पुराना ही है, किन्तु प्याली एकदम नई और आकर्षक !

कवि-विमर्श

सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

अधजल गगरी छलका करती, पूरण-घट रहता है निश्चल,
चन्द पड़े शबनमके क़तरे, हरित बना देंगे क्या मरु-थल,
रस छलकानेका न समय है, पड़ते घीकी भाँति जलेगा,
सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

शाश्वत निधन-हीन रहते क्या सुख-दुख कृत सं-सार नहीं है,
संसारी कर्मोंसे लिपटा, वह बन्धनसे पार नहीं है;
मुक्त हुए 'मानव' कैसा फिर, सुख-दुखका भागी न रहेगा,
सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

ऋषी-मुनी भी देश कालकी स्थितिका हैं रखते अवधारण,
क्योंकि सानुकूलता उनकी होती स्व-पर-श्रेयका कारण,
लता-सफलतापर उसकी ही, रक्षामें नव-कुसुम खिलेगा,
सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

मैं तो नहीं मानता जगको, इस थोथी-मायाका जाया,
द्रव्य-क्षेत्र-भव-भाव-कालकी, चलती-फिरती रहती छाया,
सत्य, शील, तप, दया बिना कुछ 'केवल त्याग' न काम करेगा,
सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

शान्ति द्वन्द एकत्र न देखे, आगे पीछे आते जाते,
हिंसासे उत्पत्ति अहिंसाकी, ही वैयाकरण बताते,
केवल अवलोकन न सार्थ है, जब तक वह कर्तृत्व न लेगा,
सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

परिभाषा-भरकी अभिगतिसे, दूर न होती हृदय कलुषता,
पूरब, पूरब-सा कैसे है ? क्यों पच्छिमकी दहती रिपुता,
क्षितिज-ककुभ-अम्बरतलमें भी, राग-द्वेष क्या घर कर लेगा,
सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

संकट संस्कृत कर देता है, आत्मग्रन्थिका विकृत-गुंठन,
खारी-तृप्त अश्रुकी बूँदें, मधुरिम शीतल कर देतीं मन,
देर भले अन्धेर नहीं है, कृतका फल भरपूर मिलेगा,
सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

सुख-दुख, पाप-पुण्यका अनुचर, दुखमें भी प्राणी सुख कहता,
विज्ञ साम्यसे देखा करते, मूरख उनमें रोता-हँसता,
नियति-नियम तो एक रहा है, कैसे कोई दो कह देगा,
सराबोर प्यालीका तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा।

श्री ईश्वरचन्द बी० ए०, एल-एल० बी०

अञ्जलि

आजसे युगों पूर्व
तारों-भरा आँचल उठा
अस्त-व्यस्त सोई-सी
रजनी अलसाई थी।
प्राची रस-सागर-तट
कुंकुम विखेरती-सी
लज्जासे ओत-प्रोत
ऊषा मुसकाई थी।
और एक वंकिम-भंगिमासे
घूँघटको खोल,
विस्फारित नेत्रोंसे झाँका वह रस-स्वरूप
आँका वह मोहक रूप
ज्योतिर्मय,
प्रभायुक्त !
सीमित हो उठा था जिसमें
विश्वका अखिल ज्ञान,
मुनियोंका अटल ध्यान,
रूपसिका अचल मान,
लहरोंका चंचल गान !
सौम्य मूर्ति,
जिसपर स्वयं मुक्ति हो मनुहारमयी
बन्द नयन !
बन्द जिनमें हो उपेक्षित विश्व

पलकोंपर सोया हो
समतामय विराग -भाव,
अधरोंपर स्मित-हास्य,
सारे बन्धनोंके प्रति
भूला-सा
भटका-सा
राग औ' विराग-हीन
चेतन, अचेतन-सा
दिव्य-रूप,
दिव्य ज्ञान,
दिव्य दृष्टि,
दिव्य प्राण !
लक्षित, अलक्षित,
अवहेलित-सी अलकोंपर
जिनका घूँघर-सा रूप,
रह-रहकर डोलता-सा,
किरणोंसे बोलता-सा,
वायुके झकोरों जैसा
कलिका-पट खोलता-सा,
सोया था शान्ति रस ।
मीठे-से
हलके-से
खोये और सोये-से
मन्द-मन्द बह रहे,
कलियोंका पराग लिये,
सौरभ, सम्मोहन और
मूर्च्छनामय राग लिये

हलके समीरणके कोमल झकोरोंके
महिमामय क्षणमें
देव !
जैसे सुधांशुपर-से
मेघ हट जाता है ।
जैसे दीप-ज्योतिकी कोमल किरण-वालाएँ
अन्तहीन तमकी तहोंको चीर देती हैं,
वैसे ही, वर्द्धमान,
वुद्धदेव,
केवली,
आत्माके वन्धनोंके
अन्तिम आवरणको चीर
शुद्ध रूप,
शुद्ध ज्ञान,
शुद्ध शौर्य,
शुद्ध वीर्य,
एक महा ज्योतिःपुंज,
अपनी विराट्तामें
अणु-अणु बिखर गया,
निखर गया अखिल विश्व,
दीप्त हुआ भामंडल,
त्रिभुवन हुआ आलोकित,
कोटि-कोटि कंठोंके
जय-जय महाघोष-से
गूँज उठे, लोक, काल,
भूसे ले नभ तक,
नाथ !

समस्त-विश्व-प्राणियोंने
मस्तकको नवाया था
झुकाये थे चरणोंमें
अपने प्रपीड़ित प्राण,
नीरव
बेसुध-से हो
सुखके रस-सागरमें
डूबते,
उतराते,
रोमाकुल,
रोमातुर,
की थी तव वन्दना
वन्दना—ज्ञानमयी,
अर्चना—ध्यानमयी,
प्रतिष्ठा—प्राणमयी,
प्रार्थना—गानमयी ।
उसकी पुण्य-स्मृतिमें
शत-शत मानवोंके
विह्वल मन-प्राणोंकी
कोमल, सजल, पङ्खुरियाँ
जो छूनेसे बिखर जायँ,
ओसकी बुन्दकियोंसे
सौगुनी निखर जायँ ।
अर्पित हैं, देव, आज
पद-रज-परागपर
श्रद्धाकी अञ्जलियाँ ।

श्री लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशान्त'

अपने २५ वर्षके साधन-हीन जीवनके द्वन्द्वोंको पारकर, आज जब लक्ष्मणप्रसादजी 'प्रशान्त' पीछे मुड़कर देखते हैं तो उन्हें सन्तोष होता है इस बातपर, कि अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं और जीवनकी वेदनाने उन्हें उस कविके दर्शन करा दिये जो उनके हृदयमें इसी दिनके लिए छिपा बैठा था। आपने कविता लिखनेके लिए काफ़ी परिश्रम किया है, और साधना की है। फिर भी, लगता तो यही है कि उनकी कविताका स्वर सहज और नैसर्गिक है।

इनकी कवितामें संसारकी अस्थिरता और जीवनकी विषमताकी हलकी छाप है। पर, कविके कर्तव्यकी ओर भी इनकी दृष्टि है—

"हर दिलमें उमड़ पड़े सागर, हर सागरमें अमृत जागे,
अमृतकी प्यालीमें मानवका एक अमर जीवन जागे।"

फूल

दो दिनकी अस्थिर सुषमापर मत इतराना फूल;
प्रात समय हँसते, मतवाले, साँझ न जाना भूल।
मत करना अभिमान रूपका केवल जग अभिलाषी;
नहीं सत्य अनुराग, स्वार्थपरता, फिर वही उदासी।
माना वन-वनमें ढूँढ़ा करता तुझको वनमाली;
पर क्या ? स्वार्थ वासनासे मानवका अन्तर खाली ?
सम्हल-सम्हल रहना शिखरोंपर, फिसल न जाना भूल;
पातपात डालीडालीमें निहित नुकीले शूल।
जिसके साथ रहे जीवन-भर खेली आँखमिचौनी;
वही विहग सूनी संध्यामें बने विरागी मौनी।

राही झूठा प्रेम दिखाकर व्यर्थ तुझे अपनाते ;
चूस-चूस पी अमृत, मसलकर, फेंक, अरे इठलाते ।
हार सृजन कर, वेध हृदय, अपने जी-भर तरसाकर ;
दुनियाने पाई शोभा, तेरा संसार मिटाकर ।

कविसे

पत्थरमें कोमलता जागे,
अंगारोंसे वरसे पानी;
निस्तब्ध गगन हो उठे मुखर,
मूकोंकी सुन भैरव वानी ।

हो उठे वावली दिशा, निशा
का चीर गहन तममें चमके;
हिमकरकी शीतल किरणोंसे
उद्दीप्त तेज रह-रह दमके ।

मानवके इंगितपर शत शत
न्यौछावर हो जायें प्राणी;
सुन मानवताका सिंहनाद
नतमस्तक हो जायें मानी ।

हर दिलमें उमड़ पड़े सागर,
हर सागरमें अमृत जागे ।
अमृतकी प्यालीमें मानवका,
एक अमर जीवन जागे ॥

कवि, गान मधुर ऐसा गा दे ।

अब कैसे निज गीत सुनाऊँ

युग-युगका इतिहास व्यथित
आँसूसे निर्मित एक कहानी,
भग्न हृदय भी आज लिये है
अपनेपनकी करुण निशानी।
वृद्ध कण्ठकी स्वरलहरी, तब कैसे जीवन राग सुनाऊँ। अब०

सुख दुखकी दुनियामें—
एकाकी हँसना रोना बाक़ी है।
उठ-उठकर गिरना गिरकर—
रोना, यह जीवन-झाँकी है॥
देख रहा संसार छलकते दृगसे कैसे अश्रु छिपाऊँ। अब०

कण-कणमें संघर्ष, धधकती—
चारों ओर समरकी ज्वाला।
भूल गया मानव मानवता,
सर्वनाशकी पीकर हाला॥
बन्धु-बन्धुका ही घातक, तब किसको अपना मीत बनाऊँ॥ अब०

भूमण्डल, अम्बर, जल, थलमें,
हाहाकार सब तरफ़ छाया।
आशान्वित अनन्त जीवनमें,
कौन? प्रलय-सा भरता आया।
अरे, शून्य इङ्गित पथपर मैं अब कैसे निज पैर बढ़ाऊँ॥
अब कैसे निज गीत सुनाऊँ।

श्री राजेन्द्रकुमार, 'कुमरेश'

"एटा जिलामें है विलराम नाम एक ग्राम
ताहीमें बसत लाला भुन्नीलाल बानियाँ,
ताके सात सुतनमें दूजो सुत कुमरेश
पढ़िबेकी खातिर विदेश चित्त ठानियाँ।
थोड़ोसो कियो है याने हिन्दीको अभ्यास कछु
और कछु जाने नाहि जगकी रितानियाँ,
कविता न जाने, पर कविनकी संगतितें
टूटी-फूटी भाषत है नित्य ही तुकानियाँ।"

—यह है 'कुमरेश'जीका जीवन-परिचय—उनके अपने शब्दोंमें। आपने आयुर्वेद कॉलेज, कानपुरमें आयुर्वेदाचार्य तक अध्ययन किया है। सन् १९३२ से लिखना प्रारम्भ किया है और तबसे निरन्तर जैन-अजैन और हिन्दीके अन्य पत्रोंमें लिखते चले आ रहे हैं।

आपने 'अंजना' और 'सम्राट् चन्द्रगुप्त' नामक दो खण्ड-काव्य लिखे हैं जो अभी अप्रकाशित हैं। एक और खण्ड-काव्य आप लिख रहे हैं।

आप नये-पुराने सभी ढंगोंकी कविता आसानीसे लिख सकते हैं। यह कुछ छायावादी शैलीको अपनाते हैं, फिर भी इनकी एक अपनी ही शैली है। इनकी बड़ी ख़ूबी यह है कि विषयके अनुसार भाषाका सुगम या गहन प्रयोग करते हैं, जो स्वाभाविक प्रतीत होती है।

'कुमरेश'जी प्रधानतः साहित्यिक अभिरुचिके आदमी हैं, और इसलिए आशा है आपकी रसधारा बढ़ती ही जायगी। आप कहानियाँ भी अच्छी लिखते हैं, जो पत्रोंमें प्रकाशित होती रहती हैं।

जागृति-गीत

जाग जीवनके करुण, वह एक अश्रुत राग ।

धुन उठे ध्वनि सुन जगतकी चेतना उर मौन
रह सके बैठी भले स्थिर तालपर यह तो न
कर उठे सहसा थिरकती एक ताण्डवनृत्य
और यह हो जाय तत्क्षण वह प्रलय-सा कृत्य
शाप या वरदान प्रतिक्षण फूँकते हों आग ।

आ भरे उत्साह तनमें और मनमें रोष
टूट जाये आज चिरकी नींद आये होश
देख लें दृग खोल अब क्या-क्या रहा है शेष
शेष क्या है, दैन्य, बन्धन, और दारुण क्लेश
हूक कर ज्वाला मिटा दे यह अमिटसे दाग़ ।

फूँक दे वह प्राण मृत-सी देहमें अविराम
स्वयं इस आरामका मनमें न लेवें नाम
उठे जड़तामें निरन्तर भयानक तूफ़ान
और पशुतासे पुरुष पा जाय यह परित्राण
खेल ले निज शम्भु शोणितसे विहँसि हँसि फाग ;
जाग जीवनके करुण वह एक अश्रुत राग ।

परिवर्तनका दास

अथसे लिखा जा रहा प्रतिक्षण है इतिका इतिहास ;
दुखमें झलक रहा है सुखका वह मादक मधुमास ।

लिये खड़ा है विरह मिलनका सुन्दरसा उपहार ;
राह हासकी देख रहा है उन्मन हाहाकार।

एक आग लेकर विरागकी जलता है अनुराग ;
मुग्ध प्रतीक्षामें आशाकी रही निराशा जाग।

नाश गीत गाता विकासके, करता है मनुहार ;
पाप जलाये दीप पुण्यका, झाँक रहा है द्वार।

मृत्यु मानिनी-सी करती है जीवनका उपहास ;
और हाय, मैं बना हुआ हूँ, परिवर्तनका दास।

बहिनसे

मुझ-से हृदयहीन भाईके बहिन बाँध मत राखी ;
जिसने तुझ दुखिया अबलाकी है न कभी पत राखी।

जो अपने स्वार्थोंपर तेरी नित बलि देता आया ;
जिसके दिलमें दर्द नहीं है, नहीं कसक है बाक़ी।

तू अपने दुःखोंसे रो-रो, हँस-हँस जूझ रही है ;
और इधर यह ढूँढ़ रहा है सुरा, सुराही, साक़ी।

यह निर्मम बेसुध अस्नेही बना पुरुषसे पशु है ;
उसे बना सकती न पुरुष फिर तू या तेरी राखी।

अरी छोड़ भाईकी छाया कसके कमर खड़ी हो ;
दिखला दुर्गा और भवानीकी-सी फिरसे झाँकी।

पन्थी

आशाओंका दीप जलाये पन्थी चला आज किस पथपर ?

पैर बढ़ाये चला जा रहा अपने सरपर रखकर गठरी ;
कहाँ हृदयकी प्यास बुझाने चला छोड़कर है यह नगरी ।

भूल न जाये राह, जा रहा मनमें किसकी दुआ मनाता,
जीमें किस उलझनके सुन्दरसे सुन्दर यह स्वप्न बनाता ।

घरपर बाट देखती होगी बैठी क्या इसकी भी रानी ;
याद इसे भी आती होगी अपनी बीती हुई कहानी ।

किसे सुनाये, किसे बताये, राह अकेली, साथ न प्रियवर ;
आशाओंका दीप जलाये पन्थी चला आज किस पथपर ?

अरमानोंमें झूम रही है क्या इसके भी एक दुराशा ;
जिसके कारण अकुलाया-सा बढ़ा जा रहा भूखा प्यासा ?

जीवनकी दुविधाओंने नित इसे कर दिया है क्या उन्मन ;
गूँज रहे कानोंमें इसके प्राणोंके क्या शत-शत क्रन्दन ।

बाधाओंने तोड़ दिया क्या इसका अन्तिम एक सहारा ;
ढूँढ़ रहा है क्या दुनियाके जानेको उस पार किनारा ।

कौन प्रेरणा लेने देती इसको चैन कहीं न घड़ी-भर ;
आशाओंका दीप जलाये पन्थी चला आज किस पथपर ?

श्री अमृतलाल, 'चंचल'

कवि और लेखकके रूपमें 'चंचल'जी समाजमें सुपरिचित हैं। विद्यार्थी अवस्थासे ही आपको साहित्यिक लगन है। जब आप ७-८ वर्ष पूर्व, हरदा कॉलेजमें पढ़ते थे, उसी समय आपने संस्कृतके सुप्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार'का हिन्दी-कवितामें अनुवाद किया था, जो प्रकाशित हो चुका है। आपको संस्कृत और हिन्दीका अच्छा ज्ञान है। उर्दू साहित्यसे भी रुचि है।

'चंचल'जीकी रचनाएँ अत्यन्त मधुर होती हैं। आप प्रकृति-दर्शनसे प्राप्त आह्लादकी अभिव्यंजना सरल और स्वाभानिक पदावलि द्वारा करते हैं; किन्तु पार्थिवके वर्णनमें भी, अपार्थिव तत्त्वकी ओर संकेत करके चलते हैं। आपकी साहित्यिक प्रगतिके मूलमें दार्शनिक संस्कृतिकी छाप है।

अमर पिपासा

कहाँ दौड़ रहा मृग-छौने अचेत,
अरे, यहाँ नीरकी आशा नहीं;
मरुभूमिकी हैं मृग-तृष्णिका ये,
यहाँ खेल तू प्राणका पासा नहीं।

यहाँ लाखों शहीद हुए कवि 'चंचल',
तू भी दिखा ये तमाशा नहीं;
यहाँ ज़िन्दगी ही बुझ जाती है, किन्तु
कभी बुझती है पिपासा नहीं।

कहाँ झूम रहा मदमत्त पतंग,
अरे, यह आग तमाशा नहीं !
वन जायेगा खाक अभी, कवि 'चंचल',
मोल ले व्यर्थ निराशा नहीं।

यह चाहकी प्यास है नित्य, सखे,
मिटती कभी यह अभिलाषा नहीं;
यह जिन्दगी ही वुझ जाती है, किन्तु
कभी बुझती है पिपासा नहीं !

मत चाहकी राहमें आहें भरो,
इस चाहमें लुत्फ़ ज़रा-सा नहीं;
इस चाहका जो भी शिकार वना,
वह वना निज प्राणका प्यासा वहीं।

यह चाह यहाँ दुखदाई, सखे,
मिटती इसकी अभिलाषा नहीं;
यह जिन्दगी ही वुझ जाती है, किन्तु,
कभी वुझती है पिपासा नहीं !

श्री खूबचन्द्र, 'पुष्कल'

आपकी अवस्था अभी २५ वर्षकी है। यह सीहौरा (सागर)के रहनेवाले हैं। काव्य-साहित्यसे बचपनसे ही अनुराग है। आप लिखते हैं—

"मुझे कविताकी स्वाभाविक लगन है, और यह ध्रुव सत्य है कि कविताके बिना मैं उन्मत्त बना रहता हूँ।"

'पुष्कल'जीने अनेक विषयोंपर अब तक जो कविताएँ लिखी हैं उनकी संख्या काफ़ी है। यह बहुत ही होनहार कवि हैं।

अपनी कवितामें आप वैयक्तिक सुख-दुखकी अनुभूतिका राग नहीं छेड़ते। बाह्य दृश्यों और पदार्थोंको केन्द्रमें रखकर यह अपने हृदयकी प्रतिक्रियाका प्रदर्शन करते हैं। भाषा, भाव और विषयोंका संकलन सरल होता है।

भग्न-मन्दिर

अहा, पावनतम पुण्य-प्रदेश, धर्मके प्रामाणिक इतिहास ;
प्रकृतिके अञ्चलमें हो मौन, निरन्तर लिये हुए उल्लास।

कलाकारोंके हे स्मृति-चिह्न, कलाओंके संग्रह संस्थान ;
अहो, पाया तुमने केवल, विश्वमें सर्वोत्तम सम्मान।

किसी मन्दिरमें मानवदल, किया करते अनुपम संगीत ;
गूँजता रहता निर्जनमें, निकटवर्ती निर्झरका गीत।

कलानिधि कहलानेके योग्य, विश्वमें सर्वोन्नत साकार ;
दिवाकर, चन्द्र और तारे, रहे निशदिन अनिमेष निहार।

शिखर रमणीक गगनचुम्बी, सर्व गुणसे हो तुम भरपूर ;
देखकर तुम्हें मानियोंका मान होता है चकनाचूर।

कहीं तुम, निर्मित हो ऐसे, चहूँ दिश निर्जन सूनापन ;
तपस्वी निश्चय हो स्वयमेव, तपस्वीके हो जीवन धन।

मूर्तियाँ विश्वेश्वरकी रम्य, वेदिका ऊपर निश्चल हैं ;
भाव अवलोकनसे होते परम पावन अति निर्मल हैं।

किसी बीहड़ वनमें तुम मौन, बने भग्नावशेष, खंडहर ;
समय पाकर निर्दय दुष्टा जराने किया जीर्ण जर्जर।

धराशायी, ओ भग्नावशेष
खंडहर, जीर्ण-शीर्ण मन्दिर,
प्रशंसा करता जन समुदाय
तुम्हारे चरणोंपर गिर-गिर।

कवि कैसे कविता करते हैं ?

कवि, कैसे कविता करते हैं ?
मैं यही विचारा करता हूँ, ये कवितापर क्यों मरते हैं ?

जीवन-पथ इनको कंटकमय,
बाधाओंमें ध्रुव सत्य विजय,
दुनियाका सुख-दुख लिखनेको,
लगता है इनको अल्प समय।

कविकी उस तुच्छ तूलिकासे मधु-अक्षर कैसे झरते हैं ?

निर्जनके सूनेपनमें क्यों
चिन्तित रहता इनका जीवन ?
प्रकृतिके प्रतिक्षणका कैसे
ये करते हैं मञ्जुल चित्रण ?

निर्बल निज तनसे फिर कैसे ये कविता-सरिता तरते हैं ?

मृतप्रायोंमें जीवन लाना
नवयुवकोंको पथ बतलाना,
दीनोंकी करुण कराहोंको
दुनियाने कवितासे जाना।

धन, वैभव, तन, बल क्षणिक, किन्तु ये कवितामें क्या भरते हैं ?

मैं चिन्तित-सा रहता निशदिन
यह कविता क्या, कैसी होती ?
छोटा-सा छन्द बनानेको
मम भावोंकी वीणा रोती।

कविता करना कब आयेगा, हम यही विचारा करते हैं !

जीवन-दीपक

जीवन-दीपक जलता प्रतिपल ।

प्राण तेल है, दीप देह है,
दोनोंका अनुपम सनेह है,
अज्ञानान्ध स्वरूप गेह है,
उसमें ज्योति जलाता निर्मल ।

सब विधि भाव प्रभाका उद्भव,
हो विलीन, क्षण-क्षणमें अभिनव,
कैसा जीवनका यह उत्सव,
नवल दीप जब जलता झिलमिल !

आशाओंकी ज्योति निकलती,
घोर निशाका धुआँ उगलती,
मानवकी यह भीषण गलती,
प्रणयी बन क्यों होता पागल ।

आता जभी कालका झोंका,
प्राण-तेल तब देता धोखा,
रुकता नहीं किसीका रोका,
जलते-जलते बुझता तत्पल ।

श्री पन्नालाल, 'वसन्त'

आप समाजके उद्भट विद्वानों और साहित्य-सेवियोंमें हैं— साहित्याचार्य, न्यायतीर्थ और शास्त्री। आपका जन्म सन् १९११ में पारगुंवा (सागर)में हुआ।

आपने संस्कृतके अनेक धार्मिक ग्रन्थोंकी टीकाएँ लिखी हैं और संस्कृत गद्य और पद्यमें मौलिक रचनाएँ की हैं।

'वसन्त'जी रात-दिन साहित्य-सेवामें निरत हैं। विचार आपके बहुत उदार और राष्ट्रवादी हैं। अनेक विषयोंपर आप सफलतासे लेखनी उठाते हैं, किन्तु आपकी प्रायः कविताएँ या तो प्रकृतिको लक्ष्य करके लिखी जाती हैं या वह राष्ट्रवादी होती हैं।

जागो, जागो हे युगप्रधान !

जागो-जागो हे युगप्रधान !
है शक्ति निहित सारी तुममें, तुमही हो जगके नर महान।

क्षितिपर हरियाली छाई है, पर सूख रहे मानव आनन,
सरिताएँ वनमें उमड़ रहीं, पर खाली हैं मानस कानन,
घनघटा व्योममें उमड़ रही, पर भूपर है ज्वाला वितान,
जागो, जागो हे युगप्रधान !

नभसे होती है बम्ब-वृष्टि, क्षितिपर सरिताएँ लहरातीं,
जठरोंमें नरकी ज्वालाएँ, हैं बढ़ी भूखकी हहरातीं,
हैं सुलभ नहीं दाना उनको, आँखोंमें छाया तम महान,
जागो, जागो हे युगप्रधान !

कितने ही भाई विलख रहे, कितनी ही वहनें रोती हैं,
कितनी माताएँ प्रतिपल अपने शिशुधनको खोती हैं,
जग भूल गया कर्त्तव्य-कर्म, जिससे माताका सुख निधान,

जागो, जागो हे युगप्रधान !

है रणचण्डीका अतुल नृत्य, दिखलाता जगमें विकट खेल,
हैं वन्धु-वन्धुमें प्रेम नहीं, है नहीं किसीके निकट मेल,
कंकाल मात्र अवशेष रहा, सव दूर हुआ वल, सौख्य, दान,

जागो, जागो हे युगप्रधान !

यह काल दैत्य ज्वालाभितप्त, करता आता है ध्वंस आज,
यह प्रलय केन्द्र उत्तप्त हुआ, है सजा रहा संहार साज,
वन उठो वीर ! हे सजल मेघ, कर दो जगका ज्वालावसान,

जागो, जागो हे युगप्रधान !

जगतीमें छाया निविड़क्लान्त, पथ भूल रहे नर सुगम कान्त,
दिखता है मानव हृदय क्लान्त, सागर लहराता है अशान्त,
लेकर प्रकाशकी एक किरण, करने जगमें आलोक दान,

जागो, जागो हे युगप्रधान !

हैं पुरुष आप पुरुषार्थ करें, वर ओज विश्वमें प्राप्त करें,
हैं तरुण, तपी तरुणाईसे, नभमें महान् आलोक धरें,
भरकर उरमें सन्देश दिव्य, फैलाने जगमें अतुल ज्ञान,

जागो, जागो हे युगप्रधान !

त्रिपुरीकी झाँकी

त्रिपुरीके सुन्दर प्राङ्गणमें रेवाका कलरव देखा ;
विन्ध्याचलके विजन विपिनमें शान्ति-क्रान्तिका युग देखा ।

खण्ड-खण्डमें कण-कणमें यश, वीरोंका छाया देखा ;
नीले नभमें पूर्व जनोंका, सिंहनाद गुञ्जित देखा ।

विजलीकी झिलमिल आभामें, वृक्षोंको हँसते देखा ;
वीरोंके वर अट्टहाससे, गिरि गह्वर मुखरित देखा ।

गिरि-मालाकी मध्य-वीथिसे लोगोंको आते देखा ;
अपने मुकुलित हृदय-क्षेत्रमें भव्य-भाव भरते देखा ।

हस्तकलाका सुन्दर चित्रण, भारत-वीरोंको देखा ;
महिलाओंके सुन्दर मनमें सेवा-व्रत जागृत देखा ।

तरुणाईकी ललित लालिमासे नभको रञ्जित देखा ;
प्रवल ओजसे रज कण-कणको उद्भासित होते देखा ।

वावन गजसे युक्त शुभ्र रथका उत्सव भरते देखा ;
लाखों जनताकी जयध्वनिसे गिर मण्डल गुञ्जित देखा ।

नीले नभमें 'राष्ट्र-पताका'को लहराते भी देखा ;
'झंडा ऊँचा रहे हमारा'का गाना गाते देखा ।

रजनीके नीरव निकेतमें कवियोंका संगम देखा ;
कोमल कान्त मधुर कविताओंसे नभको पूरित देखा ।

कुछ नवचेतन प्रतिनिधियोंको वीरभाव भरते देखा ;
'जयप्रकाश' औ वीर 'जवाहर'को गर्जन करते देखा।

सोशलिस्ट लोगोंके दिलको तत्क्षणमें गिरते देखा ;
गान्धी-वादी नेताओंको विजयलाभ करते देखा।

कभी जवाहरकी चुटकीयोंसे सबको हँसते देखा ;
कभी उन्हींके प्रवल नादसे खून खौलते भी देखा।

'मौलाना'को सजग भावसे जन जागृत करते देखा ;
कुछ अभ्यागत मिश्र-वासियोंको हर्षित होते देखा।

श्री 'सरोजिनी'के कूजनसे सभा भवन विस्मित देखा ;
'स्वागत नायक'के भाषणसे मन गद्गद होते देखा।

क्या देखा क्या आज बताऊँ, मैंने सब कुछ ही देखा ;
पर गान्धी बिन अनुत्साहकी रेखाको विस्तृत देखा।

श्री वीरेन्द्रकुमार, एम० ए०

हिन्दी साहित्यमें श्री वीरेन्द्रकुमार, एम० ए०ने प्रतिभावान् कवि और कलावान् कहानी-लेखकके रूपमें पदार्पण किया है। आपका पहला कहानी-संग्रह 'आत्म-परिचय'के नामसे प्रकाशित हुआ है जिसका हिन्दी-जगत्में समुचित आदर हुआ है।

आपकी कवितामें कोमल भावना, ऊँची कल्पना और उपादेय भावुकताका दर्शन होता है। आपकी भाषा प्रांजल और कर्ण-मधुर होती है।

यहाँ उनकी 'वीर-वन्दना' शीर्षक सुन्दर और सजीव कविताके साथ-साथ अन्य कविताएँ भी दी जा रही हैं।

वीर-वंदना

लेकर अनंग-मोहन यौवन, अधरोंपर वंकिम धनु ताने;
मनसिजकी पुष्प-धनुष-डोरी, तुम तोड़ चले, ओ मस्ताने।
नन्दन-काननमें अप्सरियाँ वन कमल बिछीं तेरे पथमें;
पद-रजकी उनको दे पराग, तू लौट चढ़ा पावक रथमें।
वह तीस वर्षका अरुण तरुण, रतिकी शैय्या भी थी प्यासी;
त्रैलोक्य-काम्य रमणीके परिणयको निकले तुम संन्यासी।

बाला-जोवन, भोली सूरत, भौंहोंमें शत्-सन्धान लिये;
चितवनमें देश-कालपर शासन करनेका अभिमान लिये।
अधरोंपर वीतराग ममताकी अनासक्त मुस्कान लिये;
उन अवहेलित-सी अलकोंमें शाश्वत यौवनका मान लिये।
चिर मोह-रात्रि भवकी अभेद्य, भेदन करने चल पड़े वीर;
भीषण जड़-चेतन युद्धोंमें तुम जूझ चले जेता सुधीर।

हिंसक पशु-संकुल वीहड़ वन, दुर्गम गँभीर गिरि-पाटीमें ;
तुम निर्भय विचरे हिंसा, भय, साक्षात् मृत्युकी घाटीमें।
निर्वसन, दिगम्बर, प्रकृत, नग्न, तुम विकृति विजेता क्षात्र-जात ;
पृथ्वी ससागरा लिपटी थी तव चरणोंपर होने सनाथ।
झाड़ी-झंखाड़, वनस्पतियाँ, वल्लरियाँ भरतीं परिरम्भण ;
विषधर विभोर हो लिपट रहे नंगी जाँघोंपर दे चुम्बन।

नाना विधि जीव-जन्तु कीड़े, चींटी, दीमक सब निर्भयतम ;
पृथ्वी, जल, अम्बर, तेज, वायु, सब त्रस थावर जड़ औ' जंगम।
तेरी समाधिकी समताके उस वीतराग आलिङ्गनमें ;
सब मिलकर एकाकार हुए, निर्बन्धन, तेरे बन्धनमें।
कैवल्य ज्योति, आदित्य-पुरुष, ओ तपो-हिमाचल शुभ्र धवल ;
तेरे चरणोंसे वह निकली समताकी गंगा ऋजु निश्छल।

इस निखिल सृष्टिके अणु-अणुके संघर्ष, विषमता औ' विरोध ;
कल्याण-सरितमें डूब चले, हो गया, वैर आमूल शोध।
तेरे पद-नखके निर्झर-तट, सब सिंह, मेमने, मृगशावक ;
पीते थे पानी एक साथ, तेरी छायामें ओ रक्षक।
जिन-चक्रवर्ति, सातों-तत्त्वोंपर हुआ तुम्हारा नव-शासन ;
तीनों कालों, तीनों लोकोंपर बिछा तुम्हारा सिंहासन।

श्री रविचन्द्र 'शशि'

श्री रविचन्द्र 'शशि'की रचनाओंने कुछ वर्ष पूर्वसे ही समाजके साहित्य-प्रेमियोंका ध्यान आकर्षित किया है। आपकी आयु अभी बाईस-तेईस वर्षकी है, पर आपने समाजके नवयुवक कवियोंमें अपना विशेष स्थान बना लिया है। आपके जीवनके वातावरणमें ही कविताका समावेश है, क्योंकि आप समाजके प्रसिद्ध कवि श्री 'वत्सल'जीके दामाद हैं और आपकी पत्नी श्री प्रेमलता देवी 'कौमुदी' भावुक कवियित्री हैं।

श्री रविचन्द्रजीकी कविताएँ कल्पना-प्रधान होती हैं। छायावादी शैली आपको प्रिय मालूम होती है और आपकी राष्ट्रवादी कविताएँ ओजपूर्ण होती हैं।

भारत माँसे

याद आती आज भी है यश-भरी तेरी कहानी;
कीर्ति-गिरिपर मुस्कुराती जगविजयिनी नवजवानी।
थी कभी इस विश्वकी तू कोहनूर, सुवर्ण-चिड़िया;
गर्व भाल उठा रही थी, 'सभ्यताकी वृद्ध रानी'।

वीरता बल ओजसे, जिसकी बनी गाथा पुरानी;
है युगोंसे बनी शाश्वत वीर मनुजोंकी कहानी।
अमित तममें सन रही थी विश्वकी जब राह सारी;
युगल पद-रेखा तुम्हारी थी धराके पथ पुरानी।

चंचला कलकलस्वरा जिसमें तरंगिनि डोलती थी;
गर्वकी द्रुत मेघ-माला सरस मधुरस घोलती थी।
वीर गुण-गाथा सुनाकर आज राजस्थान रोता;
विजयलक्ष्मी सदा जिसका स्वर्ण-आनन खोलती थी।

आज उसके मृदुल पदमें वेड़ियाँ हैं झनझनातीं ;
किस विरह किस वेदनाका आह, अब वे गीत गातीं।
वक्षमें है घाव भारी, हथकड़ीं करमें पड़ीं है ;
हा, ग़ुलामी विषम-हाला आज जिसका जी जलाती।

विश्वका आदर्शवादी, आज जग पद चूमता है ;
जीर्ण शीर्ण,ऽवशेष टुकड़ेपर मर्दी हो झूमता है।
दूसरोंके तालपर हा, गान गाता नाचता है ;
हत-वदन वह, आज पीड़ा-सदनमें हा घूमता है।

आज जगके मुस्कुरानेमें छिपा है हास तेरा ;
वेदनाके रक्तदीपोंसे सजा आकाश तेरा।
धराको, तमपुंजको, यश-चन्द्रिका तूने दिखाई ;
एक अनुचर व्यंगसे अब, कर रहा परिहास तेरा।

आज तेरीं शक्तियाँ पदमें पड़ी हैं, रो रहीं हैं ;
क्यों वृथा अनुतापका यह भार रो-रो ढो रहीं हैं।
जननि, तेरी मातृप्रेमी, हुई जो सन्तति दिवानी ;
वह विहँसकर जान क्या सर्वस्वको भी खो रहीं हैं।

पद-दलित वसुधा विताड़ित कहाँ वह, अभिमान तेरा ;
खर्व कैसे हो गया, स्वातन्त्र्य-सौख्य-निशान तेरा।
क्या न तू है सिंहनी हरि-सुत यहाँ क्या फिर न होंगे ;
क्या न होगा विश्वमें फिरसे, जननि, जयगान तेरा ?

श्री 'रत्नेन्दु', फरिहा

'रत्नेन्दु'जी, फरिहा, जिला मैनपुरीके रहनेवाले हैं। यह कवितामें स्वाभाविक रुचि रखनेवाले नवयुवक कवि हैं। आप लगभग ४०-५० कविताएँ लिख चुके हैं, जिनमें कई तो बहुत लम्बी-लम्बी हैं। दोहे, कवित्तसे लेकर छायावादी और हालावादी आदि सभी शैलियोंका प्रयोग करके आपने अपनी रचनाओंकी शैली निर्धारित करनेके लिए परीक्षण किया है।

आपकी कविताओंमें अनेक भावोंका सम्मिश्रण होता है इसलिए आशय कहीं-कहीं दुरूह हो जाता है। किन्तु इनकी शब्दयोजना बहुत सुन्दर होती है। कल्पनाकी उड़ान भी खूब लेते हैं।

प्रकृति-गीत

मेरे अंगोंमें पहनाती
माँ क्यों तू इतने गहने,
उषा तुल्य फूटी पड़ती छवि
स्वतः वाल चन्द्राननमें।

कर्ण-विवर-भेदक वाद्योंकी
अच्छी लगती गूँज नहीं,
मधु निशीथका मर्मर भाता
जैसा निर्जन काननमें।

माँ, तेरा तो घटी यन्त्र यह
घंटों रुक-रुक जाता है,
रवि-शशि पल भर कभी न भूले
निश-दिनके संचालनमें।

माँ, तेरे इस नृप प्रबन्धमें
श्रमिक कृषक भी भूखे हैं,
कण-कण तक मुसकाता रहता
शुक्लाके शशि-शासनमें।

आँखोंमें लज्जाञ्जन भर दे
यौवन-वेग निहार सकूँ,
बालामृत मद हीन पिला तू
माँ, मेरे शिशु-पालनमें,

माँ, किस नारीने आजीवन
निज कर्तव्य निभाया है,
उषा पुजारिन कभी न चूकी
निज रविके आह्वाननमें।

माँ, वह पचरंगा दुकूल अब
बनवा नहीं नवीन मुझे,
दोष छिपा न सकूँ फेनोज्ज्वल
वसन करूँगा धारण मैं।

किस मानवका कितना कोई
जीव न मरनेका साथी,
मुदित दिवस-भर नलिनी रहती
चन्द्रोदयके साधनमें।

नर यात्री-पोतोंसे जलकी
क्या अथाह छवि देख सकें,
नक्र चक्र जैसा पाते सुख
सागरके अवगाहन में।

शिशु तो मात गोदको देते
मल-पुरीष क्षेपणसे भर,
तिक्त स्वादसे सबको रुचती
माँ, आँबी बालापनमें।

गन्ध प्रकृतिके लिए नियत हो
जिनकी, ऐसे ज्योतिर्मय,
सुमनोंके सुरतरु अनन्त, माँ
उपजा इस उर आँगनमें।

मनन

मौन रजनीकी गहन निस्तब्धताको चीर,
स्वर भरूँगा विश्व-भरका खींच श्रेष्ठ समीर।

युग युगोंकी चेतना सोई, उठी है जाग,
उगल दूँगा 'कवि हृदयसे काव्यकी-सी आग'।

विविध रूपोंका मुसाफ़िर, सिन्धुका हूँ नीर,
जगत् संसृति चित्रपटकी एक क्षुद्र लकीर।

चाँदनी शशिसे कहे क्या वास निज इतिहास,
गगनसे क्या कुछ छिपा है तड़ित चपल-विलास।

विश्वका कण-कण परस्पर कर रहा आलाप,
मुझे अपनेमें मिलानेके लिए चुपचाप।

खुद समझ लूँगा वताता पूँछनेपर कौन,
नित्य दे आती उषा रविको निमन्त्रण मौन।

वीर जौहर-व्रत करूँगा सहन कर हर व्याधि,
लगी ध्रुव ध्रुव तक रहेगी यह अनन्त समाधि।

साधनामें लीन था मैं नेत्रसे आभास
एक निकला, किया जिसने रूपका विन्यास।

श्री अक्षयकुमार, गंगवाल

आपने अपना पद्यात्मक परिचय इस प्रकार प्रेषित किया है—

"परिचय मेरा है क्या, जो दूँ लेकिन तेरा है आदेश,
इसीलिए कुछ लिख दूँ, माता, अजयमेरु है मेरा देश,
ग्राम सिराना है छोटा-सा, उसमें है मेरा लघु धाम,
नेमिचन्द्रजीका मैं सुत हूँ, 'अक्षय' है मेरा लघु नाम,
मारवाड़में रहता हूँ अब है कालू आनन्दपुर ग्राम,
यहाँ किया करता हूँ मातः अध्यापन जैसा कुछ काम।
हिमसे भी हैं अतिशय शीतल, 'ज्वालाप्रसाद' मेरे मित्र,
मार्गप्रदर्शक हैं मेरे वे, औ' उनका अति विमल चरित्र।
बस इतना तो ही होता है, कविताकारोंका इतिहास:
सुख-दुखकी बातें लिखना तो होगा यहाँ सिर्फ़ उपहास।"

गंगवालजीकी कविताएँ जैन-पत्रोंमें प्रायः छपती रहती हैं। आधुनिक शैलीकी संवेदनाशील और क्रान्तिके भावोंको जगानेवाली कविताएँ आप सुन्दर लिखते हैं।

रे मन!

रे मन, मन ही मनमें रम रे।
विकसित होकर प्राण गवाँता उपवनका उद्यम रे। रे मन०

है दैवी वरदान रूप सौन्दर्य अनूठा मिलना,
किन्तु सदा पीड़ित देखी निर्धनकी सुन्दर ललना,
नोंच-नोंच पीड़ित करते हैं कामी, धनिक, अधम रे। रे मन०

कितना सुन्दर, कितना चंचल, काननका वह मृग रे,
पर उसमें क्या तत्त्व देखता, दुष्ट व्याधका दृग रे,
वही रूप लेकर रहता है उस अबोधका दम रे। रे मन०

वैभवका वैभव दिखता है सुन्दर, सुन्दरतर रे,
अद्‌भुत महल, अनूपम उपवन, गज, रथ, जर, जेवर रे,
चोर लुटेरोंसे पिटवाता वह प्रिय अप्रिय सम रे। रे मन०

अपनापन अपनी स्वतन्त्रता अपनेमें ही लख रे,
इस दम्भी मायाकी जगकी तुझको नहीं परख रे,
सहनशीलता नहीं यहाँ तू चलना सहम सहम रे। रे मन०

उद्बोधन

उठ, उठ मेरे मनके किशोर!
उठ रहा अनल, उठ रही अनिल, उठ रहा गगन, उठ रहा सलिल,
पार्थिव कणकणने व्याप्त किया उठ-उठकर यह ब्रह्माण्ड अखिल,
उठ पंच तत्त्वके साथ-साथ क्या इनसे तू है भिन्न और,
उठ, उठ मेरे मनके किशोर!

उठ रहीं वेदनाएँ प्रति पल, उठ रहीं यातनाएँ प्रति पल,
आहें बन-बन चढ़ रहीं गगनमें, आशाएँ जगकी जलजल,
वेदना यातना आशाओंका तू भी उठकर पकड़ छोर,
उठ, उठ मेरे मनके किशोर!

मानवता उठती जाती है, दानवता बढ़ती जाती है,
इस पुण्य-भूमिकी नवतासे अभिनवता उठती जाती है,
इनको सँभालनेको ही उठ, कुछ लगा जोर, कुछ लगा जोर,
उठ, उठ मेरे मनके किशोर!

हलचल

पतन भी उत्थान भी है।

है जहाँ निशिका अँधेरा, है वहीं होता सवेरा ;
रवि निशाकरका गगनमें उदय भी अवसान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

सुमन खिलते हैं मुदित हो, म्लान भी होते दुखित हो ;
विश्वकी इस वाटिकामें, म्लान भी मुस्कान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

इन दृगोंमें जल छलकता, और उनमें मद झलकता ;
हृदय वारिधिमें जहाँ भाटा वहाँ तूफ़ान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

है कहीं वीरान जंगल, औ' कहीं उद्घोष दंगल,
इस धरातलपर कहीं कलरव, कहीं सुनसान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

है कहींपर मूक पीड़ा, औ' कहीं उद्दाम क्रीड़ा ;
विश्वके वैचित्र्यमें प्रासाद और श्मशान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

है कहीं साम्राज्य लिप्सा, औ' कहीं भीषण वुभुक्षा ;
विश्व मन्दिरमें कहीं षट्रस, कहीं विषपान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

श्री चम्पालाल सिंघई, 'पुरन्दर'

आपकी जन्म-तिथि ५ फ़रवरी सन् १९१९ है। आपने माधव कॉलेज उज्जैनमें एफ़० ए० तक शिक्षा पाई है और उसके उपरान्त अपने व्यापार-कार्यको सँभाल लिया है।

आप सन् १९३५से कविताएँ और कहानियाँ लिख रहे हैं, जो समय-समयपर जैन-पत्रों तथा 'माधुरी' 'मदारी', और 'जयाजी प्रताप' आदि साहित्यिक पत्रोंमें प्रकाशित होती रही हैं। आपने बाल-साहित्यकी भी सृष्टि की है। 'झुनझुना' नामक बालकोंके पत्रमें आप 'सरयू-सहोदर' के नामसे लेख और कहानियाँ देते हैं।

आपके छोटे भाई श्री गेंदालाल सिंघई सुन्दर गीतिकाव्य लिखते हैं।

'पुरन्दर'जीकी कविताएँ ओजमयी और प्रसाद गुणयुक्त होती हैं।

दीप-निर्वाण

(कन्याके स्वर्गवासपर)

पलमें हुआ दीप निर्वाण।

जीवनका पूरा प्रकाश था,
आशाओंका मधुर हास था,
प्रेम-पयोनिधिका विलास था,
दो हृदयोंके स्नेह-मिलनका सुन्दर फल था वह अनजान।

जब तक श्वासा तब तक आशा,
कुटिल जगत्का यही तमाशा,
क्षणमें आशा हुई निराशा,
ज्योति मनोहर क्षीण हो गई, नष्ट हुए उरके अरमान।

जब तक नश्वर देह न छूटी,
तब तक ममता-रज्जु न टूटी,
हाय, कालने कैसी लूटी,
अभी-अभी सुख-सेज रही जो वह भी अब बन गई मसान।

चन्देरी

रहे चिरन्तन चन्देरी जिसको निज मान दुलारा है।

उठा उच्च शिर-शृंग विंध्य-गिरि नित रक्षा-रत होता,
वेत्रवतीका परम पूत पथ पादाम्बुजको धोता,
जिसका नाम-स्मरणमात्र मनसे कायरपन खोता,
सदा काल अद्भुत साहसका रहा सलोना सोता।

धीर-वीर रणसिंह-व्रती कुल-लाजधरोंका प्यारा है।

जिसने स्वाभिमानसे अपना ऊँचा शीश उठाया,
उस शिशुपाल नृपाल-श्रेष्ठका सुयश महीमें छाया,
जहाँ कन्दराओंमें अनुपम मूर्तिसमूह रचाया,
तपकर वहाँ महर्षिवरोंने ज्ञान अनोखा पाया।

जिनके अनुगामी हैं समझे 'तृणवत् भूतल सारा है'।

कीर्तिपालकी कीर्ति कीर्तिगढ़, यहाँ अचल अभिमानी,
बुन्देलोंके प्राणदानको जो अमरत्व-प्रदानी,
राजपूत महिलाओंके जौहरकी अमिट निशानी,
कण-कण कथित यहाँ राणा साँगाकी विजय-कहानी।

प्रण-पालन हित प्राणार्पण-युत वही त्यागकी धारा है।

शिल्पकला-कौशलकी कोने-कोने फैली राका,
वस्त्र-कलामें निपुण, मध्य-भारतका यह है ढाका,
रिक्त न होवे कभी रम्यता कोष विपुल सुषमाका,
गूंज रहा है आज सिन्धियाके प्रतापका साका।

आत्मशक्ति-साहसके मदमें यश-सौरभ विस्तारा है।

प्रगति-प्रवाह

श्री मुनि अमृतचन्द्र, 'सुधा'

श्री अमृतचन्द्र 'सुधा'का जन्म सन् १६२२में आगरेमें हुआ। आपके पिता पं० युगलकिशोरजी अपने यहाँके प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। सन् १६३८ में इन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदायकी मुनि-दीक्षा ले ली। आपने लगभग सात कविता-पुस्तकें रची हैं, जो प्रकाशित हो चुकी हैं।

इनकी कविताओंका विषय प्रायः धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक होता है। कविताकी शैली आधुनिक ढंगकी है। भाषा और भाव सरल होते हैं।

अन्तर

मानस मानसमें अन्तर है।

अड़ी खड़ी है आज हमारे
सम्मुख कैसी जटिल समस्या ;
सुलझ न सकती, अरे, कहो, क्या
विफल हुई सम्पूर्ण तपस्या ?
सुप्त पड़ी है वही भूमिका जिसपर उन्नति पथ निर्भर है।

गर्वित था जो देश कभी
अपने गौरवके गानोंसे ;
आज शून्य होता जाता वह
नितके नव-अपमानोंसे।
नाम हमारा कभी अपर था, काम हमारा आज अपर है।

रह करके परतन्त्र हमारा
क्या कुछ जीनेमें हैं जीना ;
वीरोंका वह खून, अरे, क्या
निकल गया बन पतित पसीना ?

कहो आज अस्तित्व हमारा क्योंकर तुला लचरतापर है ।

बढ़े जा

बढ़े जा, अरे पथिक, मत बोल !
जब तक तेरे विस्तृत पथकी अन्तिम संध्या निकट न आ ले ।

देख, कहीं अब तू मत सोना, व्यर्थ समय यों ही मत खोना ;
कभी न भूल प्रमादी होना, निरुत्साहका बोझ न ढोना ।
भयको कर भयभीत हृदयसे, निर्भयताको ध्येय बना ले ।

चाहे लाखों संकट आयें, भीषणताएँ आन सतायें ;
पर तेरे पगकी सीमाएँ पथसे विचलित हो ना जायें ।
अपनी धुनमें गाये जा तू, अपने पथके गीत निराले ।

अग्र गमन हो प्रतिदिन तेरा, कह दे मैं जगका, जग मेरा ;
कभी मार्गमें हो न अँधेरा, जब तू जागे तभी सवेरा ।
पराधीनताके मुखमें तू जड़ दे आज़ादीके ताले ।

थक मत, आगेको बढ़ता जा, उन्नतिके गिरिपर चढ़ता जा ;
पान्थ, परीक्षामें कढ़ता जा, निजमें निजताको पढ़ता जा ।
होकर प्रेम-प्रणयमें पागल पीले भर-भर रसके प्याले ;
जब तक तेरे विस्तृत पथकी अन्तिम संध्या निकट न आ ले ।

जीवन

प्रेममय जीवन बनूँ मैं।

साधना मेरी अभय हो, सत्यसे सुरभित हृदय हो;
सफल तरु-सी वर विनय हो, सुखद मेरा प्रति समय हो।

स्वच्छता-धन घन बनूँ मैं।

हो मिली मुझको सफलता, और अचला-सी अचलता;
नाश हो सारी विफलता, मैं निभा पाऊँ सरलता।

सरसता-उपवन बनूँ मैं।

दृग् सदयताके सदन हों, मधुर मधुसे भी वचन हों;
मित्र मेरे सुजन जन हों, लख मुझे सब मुदित मन हों।

आप अपनापन बनूँ मैं।

पाउँ सत्कृतमें सुगमता, त्याग दूँ सम्पूर्ण ममता;
भस्म कर डालूँ विषमता, धार लूँ निज आत्म-दमता।

निर्धनोंका धन बनूँ मैं।

मानसिक संध्या विमल हो, भावना मेरी धवल हो;
धर्ममय पल हो, विपल हो, शील भी शुभ हो, सबल हो।

सौख्यका साधन बनूँ मैं।

श्री घासीराम, 'चन्द्र'

श्री घासीराम 'चन्द्र', नई सराय, लगभग १०-१२ वर्षसे कविताएँ लिख रहे हैं। प्रारम्भमें आपने कवि-सम्मेलनोंके लिए समस्या पूर्त्ति करके कविता रचनेका अभ्यास किया। अब आप स्वतन्त्र विषयोंपर रचनाएँ करते हैं। आप भावोंकी सुकुमारताकी अपेक्षा विषयकी उपयोगिताकी ओर अधिक आर्कषित होते हैं।

फूलसे

चार दिनकी चाँदनीमें, फूल, क्योंकर फूलता है ?
बैठकर सुखके हिंडोले, हाय, निश-दिन झूलता है !

आयगा जब मलय पावन, ले उड़ेगा सुख सुवासित ;
हाथ मल रह जायँगे माली, बनेगा शून्य उपवन।

फिर बता इस क्षणिक जीवनमें, अरे, क्यों भूलता है ?

कर रहा श्रृंगार नव-नव नित्य-नित्य सजा-सजाकर ;
गा रहा आनन्द धुरपद प्रेम-बीन बजा-बजाकर।

कालकी इसमें सदा रहती अरे प्रतिकूलता है !

आज तू सुकुमारतामें मग्न है निश-दिन निरन्तर ;
एक क्षण-भरमें, अरे, हो जायगा अति दीर्घ अन्तर।

है यही जग-रीति क्षण-क्षण सूक्ष्म औ' स्थूलता है।

आज जो हर्षा रही पाकर तुझे सुकुमार डाली ;
कल वही हो जायगी सौभाग्यसे वस हाय खाली।

देखकर लाली जगत्की काल निश-दिन भूलता है।

आज जो तेरे लिये सर्वस्व करते हैं निछावर ;
कल वही पद धूलमें तेरे लिये फेंके निरन्तर।

स्वार्थ-मय लीला जगत्की, मूर्ख, क्योंकर हूलता है।

विश्वका नाटक क्षणिक है, पलटते हैं पट निरन्तर ;
आज जो है कल उसीमें ही रहा सुविशाल अन्तर।

है अभी अज्ञात इसमें 'चन्द्र' क्या निर्मूलता है ;
चार दिनकी चाँदनीमें फूल क्योंकर फूलता है ?

पं० राजकुमार, 'साहित्याचार्य्य'

पं० राजकुमारजी जैन-समाजके अतीव होनहार और सुयोग्य विद्वान् हैं। आप संस्कृत साहित्यके तो आचार्य हैं ही, हिन्दीके भी सुलेखक और कुशल कवि हैं। आपने 'पार्श्वाभ्युदय' नामक संस्कृत काव्यका हिन्दी-कवितामें सुन्दर अनुवाद किया है। ये खंड-काव्य तथा अतुकान्त कविता लिखनेमें विशेष रूपसे सफल हुए हैं।

आह्वान

जब जीवन-भाग्याकाश घिरा था
कुटिल कलुष-घन-मालासे।
धू-धू कर जले जा रहे थे
नर-पशु जलती ऋतु-ज्वालासे॥
भू माँका था फट रहा वक्ष,
आकाश सजल-नयनाञ्चित था।
वह स्नेह, विश्व-बन्धुत्व-भाव
जीवनमें कहीं न किञ्चित् था॥
तब धीर वीर, तुमने आकर
समताका पाठ पढ़ाया था।
वसुधापर सुधा-कलित करुणा–
का सुन्दर स्रोत बहाया था॥

× × ×

पर वीर, तुम्हारा कर्म-मार्ग
हो चुका आज विस्मृत विलीन।
कर रहे आजसे फिर मानव–
मंजुल मानवताको मलीन॥

जल रहे निखिल पुरजन-परिजन
विध्वंस - पिण्ड - ज्वालाओंमें ।
है चीख रही सारी जनता
उन कोटि-कोटि मालाओंमें ।।

लुट गया आज माताओंका
सौभाग्य, हुई सूनी गोदी ।
मानवने फिर संहार-हेतु
वह एक नई खाई खोदी ।।

नर कहीं तरसते दानेको
शिशु कहीं विलखते मात-हीन ।
झोंके जाते हैं कहीं वही
स्फोटक - ज्वालाओंमें, कुलीन ।।

हे वीर, विषमता यह कैसी
कैसा यह अत्याचार-जाल ।
क्यों हुआ अचानक ही कैसा
भीषण यह कुटिल कराल काल ।।

आओ, फिर आओ, महावीर,
यह विषम परिस्थिति सुलझाओ ।
सत्पथसे भूली जनताको
मङ्गलमय पथ दिखला जाओ ।।

श्री ताराचन्द, 'मकरन्द'

'मकरन्द'जीकी कविता प्रायः जैन-पत्रोंमें छपती रहती है। इनकी कविताएँ शैलीमें छायावादी ढंगकी होती हैं। जहाँ कविताओंका अभ्यन्तर कुछ अस्पष्ट हो जाता है, वहाँ छायावादी शैली कवि और पाठक दोनोंके लिए बाधक हो उठती है। आशा है प्रगतिकी सीढ़ियोंपर दृढ़तासे पग रखते हुए 'मकरन्द' अभी आगे और बढ़ेंगे—ठीक दिशामें।

जीवन-घड़ियाँ

ओ जाग, जाग सोनेवाले
हो गया देख स्वर्णिम प्रभात,
जीवन-घड़ियाँ क्यों सोनेमें
यों बिता रहा जब गई रात ?

सोते बदहोश तुम्हें मानव
हैं बीत चुकी अगणित सदियाँ,
क्यों अलसाये तुम पड़े हुए
खो रहे आप अपनी निधियाँ ?

मानस-तटपर यद्यपि तेरे
आते हैं किरणोंके वितान,
फिर भी तू सोता ही रहता
आलसकी चद्दर तान-तान !

जीवनके क्षण-क्षण बीत रहे
मोतीकी टूट रहीं लड़ियाँ;
इन इने-गिने दो दिनमें ही
बीती जातीं जीवन-घड़ियाँ।

फिर हाथ भला क्या आवेगा
सचमुच यदि हालत यही रही,
मौका पा करके ही धो लो
वहती गंगाकी धार यही।

ओस

रजनीके प्रियतम बनकर, ले प्रणय वेदना सपना;
आये निशीथके अंचल, अस्तित्व मिटाने अपना।
ऊषाकी अरुणा नभसे स्वागत करनेको तेरा;
प्रतिविम्बित हो प्रतिक्षणमें, तेरा शृंगार सुनहरा।
अथवा स्वर-परियोंके ये, मालाके मोती क्षितिपर;
किसके उरमें परिवेदन, उनकी निर्ममतम कृतिपर।
किस हृदयंहारके अनुपम, उज्ज्वल ये विखरे मोती;
शृंगार सुरभिमें परिणत, तुमने छोड़ा है रोती?
स्वप्नोंकी अर्ध-निशामें शीतल समीर झकझोरे;
निस्तब्ध प्रकृतिके आँसू पुलकित उरके किलकोरे।
देदीप्यमान रवि आकर, वसुधापर नवल प्रभाएँ;
तेरे मृदुतम तव तनसे कई एक निकलती आहें।
क्षणभंगुर है जग-मानव, जल-कणकी करुण कहानी;
वैराग्य हृदयमें तेरे, नयनोंमें होगा पानी।

पुनर्मिलन

मेरी जीवन कुटियामें तुम एक बार फिर आना।

जीवन - वसन्तमें मेरे
जब छाई हो अरुणाई,
कोकिलके पुलकित स्वरने
हो प्रेम रागिनी गाई;

जीवनके पुनर्मिलनमें मैंने तुझको पहचाना।

मैं मृदुल मालिनी भोली
तू मन्त्र-मुग्ध-सा योगी,
तेरे वियोगमें मेरी
अन्तर्ज्वाला क्या होगी;

स्वर क्षीण हुई वीणाकी तन्त्रीके तार जगाना।

मेरे जीवन - उपवनमें
जब सुरभित सुमन खिले हों,
चिर-चिर अनन्तके पथमें
कलियोंसे मधुप मिले हों;

लहरोंके फेनिल पथमें बस एक बार मुस्काना।

हों चन्द्र देव, प्रिय रजनी
ये झिलमिल नभके तारे,
मैं शून्य वासिनी जगकी
ये ही हैं एक सहारे;

सहसा विलीन हो निशिमें फिर भूल मुझे मत जाना।
मेरी जीवन कुटियामें तुम एक बार फिर आना॥

श्री सुमेरचन्द्र, 'कौशल'

श्री सुमेरचन्द्रजी वकील 'कौशल' सिवनीकी प्रसिद्ध फ़र्म हुक्मचन्द कोमलचन्दके मालिक हैं। आपने अभी तीन वर्ष पूर्व वकालत प्रारम्भ की है। आपकी अभिरुचि बाल्यकालसे ही साहित्य, दर्शन और संगीतकी ओर विशेष रूपसे है। आप लेख, कहानियाँ और कविता लिखा करते हैं जो जैन-अजैन पत्रोंमें सम्मानके साथ प्रकाशित होती हैं। आप एक प्रभावशाली वक्ता और उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। आपकी कवितामें दार्शनिक पुट रहती है, फिर भी वह सुबोध और सुन्दर होती हैं।

जीवन पहेली

इस छोटेसे जीवनमें, कितनी आशाएँ बाँधी;
लघु-उरमें भावुकताकी आने दी भीषण आँधी।
आशाका उड़नखटोला ऊँचा ही उड़ता जाता;
क्या मृगतृष्णामें पड़कर, यह जीवन सुखी कहाता ?
दुख सुखकी आँखमिचौनी है सब संसार बनाये;
आशा तृष्णाके वश हो, जगतीमें पुरुष भ्रमाये।
जीवन है अजब पहेली, क्या भेद समझमें आये;
'कौशल' ज्यों इसको खोलो, त्यों-त्यों यह उलझी जाये।

आत्म-वेदन

निराशामें वैठे मन मार,
किया करते हो किसका ध्यान ;
वनाकर पागल जैसा वेष
किया क्यों सुन्दर तन अति म्लान ?

अरे, तुम हो उत्कृष्ट विभूति,
प्रणय-तन्त्रीकी सुन्दर तान ;
मृषा सुख-स्वप्नोंका छवि-धाम,
किया क्यों मायाका परिधान ?

लिया क्या छीन तुम्हारा प्यार,
किसी निर्मम निर्दयने आज ;
बनाया कातर किसने आज
दूसरोंके हो क्यों मुँहताज ?

खोल निज अन्तरदृष्टि महान्,
त्याग दुनियाके कार्यकलाप ;
खोजता फिरता है तू जिसे,
हृदयमें छिपा हुआ है 'आप'।

श्री बालचन्द्र, 'विशारद'

श्री बालचन्द्रकी आयु अभी २० वर्षकी है। कविता रचनेमें इनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति है। मालूम होता है जीवनके विषादने इन्हें निराशावादी बनाया है। ये अपने आपको 'नियतिके हाथकी गेंद' मानते हैं।

बालचन्द्रजी कविता केवल 'स्वान्तः सुखाय' रचते हैं, और इसमें वास्तविक आनन्द अनुभव करते हैं।

चित्रकारसे

चित्रकार चित्रित कर दे।
मेरा शिव औ' सत्य चित्र, सुन्दर पटपर अंकित कर दे।

नैराश्य-सिन्धु यह अगम अतल,
जीवन-नौका हो रही विचल,
लहरें घातक, अतिशय हलचल,
मन-माँझी भी मेरा चंचल,
सुख दुखकी विकट तरंगोंको तू उत्तालित दर्शित कर दे।

मेरे जीवनमें प्रेम छिपा,
अनुराग छिपा, सन्ताप छिपा,
पीड़ाओंके उद्गार छिपे,
हँसते-रोते उद्‌गार छिपे,
कुछ हूक छिपी कुछ भूख छिपी, स्पष्ट आज सन्मुख रख दे।

मेरे जीवनमें व्याज नहीं,
मेरे जीवनमें साज नहीं,
मेरे मस्तकपर ताज नहीं,
मुझपर ही अपना राज नहीं,

मैं सदा निराश्रित, नियति-शास्ता-शासित तू इसमें लिख दे।

सन्ताप-तप्त ' ये जलते क्षण,
आक्रान्त व्यथित पृथ्वीके कण,
दावानल दग्ध बृहत्तर वन,
संकुल-व्याकुल खग-पशु जन गण,

ऐसे कितने आदर्श ढूँढ़कर पृष्ठभूमि निर्मित कर दे।

९ अगस्त

यह दिन महान,

स्मृतिपटपर अंकित निशान,
मानस पीड़ाका मूर्त ज्ञान,
झंकृत करता हृत्तन्त्रि तान,
शंकित कम्पित निश्वस्त प्राण,
हा आह गान।

अन्धी रजनीका अन्धगान,
स्वर्गंगाका शुभ दीप-दान,
नैराश्य अस्तका श्रान्त मान,
अन्तरका आशा ज्योति ज्ञान,
संस्मृत स्वज्ञान।

वह दृश्य आज भी कम्पमान,
आता समक्ष जीवित सप्राण,
अनजान आत्तिसे भयाक्रान्त,
शंकित हो उठते युगल कान,
वह अश्रुदान।

वे नवयुगके नवयुवक-प्राण,
वे सजग, गठिततन औ' सज्ञान,
झंडा करमें ले स्वाभिमान,
बढ़-बढ़ करते थे शीस-दान,
वह राष्ट्र-मान।

वह क्रन्दन-स्वर, वह रुदनगान,
वह पीड़ा, वह त्रस्ताभिमान,
सन्तप्त मान, संत्यक्त जान,
संकल्पशक्तिसे शक्त प्राण,
अब भी समान।

हम शान्त रहें या रहें क्लान्त,
हम सुखी रहें या दुःख उद्‌भ्रान्त,
हम मुक्त रहें या पराक्रान्त,
स्मरण रहेगा यह वृत्तान्त,
यदि देश ज्ञान।

गीत

आज हमें फिर रोना होगा।

नई-नई आशाएँ लेकर,
अरमानोंको खूब संजोकर,
स्वप्न-चित्र सुखका खींचा था आज उसे फिर धोना होगा।
आज हमें फिर रोना होगा।

मधुर कल्पना-जाल बिछाकर,
अनुपम अतिशय महल बनाकर,
निर्मित अलस अलौकिक जगको आज बाध्य हो खोना होगा।
आज हमें फिर रोना होगा।

अब न रहेंगी सुखद वृत्तियाँ,
शेष बचेंगी मधुरस्मृतियाँ,
उन्हें छिपाये ही हृत्तलमें मरते-मरते जीना होगा।
आज हमें फिर रोना होगा।

'आंसूसे'

कौन आ रहा है तुम जिसका,
स्वागत करने आए हो।
चुन-चुन मुक्तामणि सुन्दरतम,
हार सजाकर लाए हो ॥१

कहो, आज क्यों प्रकट हुए हो,
भग्न हृदयके मृदु उद्‌गार।
कैसे ढुलक पड़े हो बोलो,
कैसा पीड़ाका उद्धार ॥२

अरे वेदनाके सहचर तुम
तप्त हृदयके मृदु सन्ताप।
उमड़ी पीड़ाकी सरिताके,
कैसे अभिनव अनुपम माप ॥३

छलक पड़े तुम, ढुलक पड़े तुम,
मन्द-मन्द अविरल गति धार।
इन विपदाओंके समक्ष क्या,
मान चुके हो अपनी हार ॥४

हार! नहीं, यह विजय तुम्हारी,
सहनशीलताके सुविचार।
आँख उठाकर देखो, रोता
हमदर्दीसे यह संसार ॥५

श्री हरीन्द्रभूषण जी, सागर

श्री हरीन्द्रभूषणजी एक उदीयमान कवि हैं। यह गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज बनारसके साहित्यशास्त्री हैं और हिन्दीके अच्छे लेखक हैं।

निवास-स्थान इनका सागर है और कुछ वर्ष तक ये स्याद्वाद महाविद्यालय तथा हिन्दू विश्वविद्यालय काशीके स्नातक भी रह चुके हैं। साहित्यकी तरह समाज और राष्ट्र-सेवासे भी आपको लगन है।

आपकी कविता भावपूर्ण और भाषा प्राञ्जल है।

वसन्त

मैं समझ नहीं पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

(१)

अधखुला वदन अधभरा पेट,
है कौन खड़ा यह कृषित काय।
आँखोंमें मोती छलक रहे,
मैं समझ गया यह कृषक हाय।

सर्दी गर्मीका नहीं भेद,
श्रमसे जिसको है सदा काम।
भरपेट अन्न उसको न मिले,
जिससे पलती दुनिया तमाम।

विश्वम्भर अन्नपूर्णाके,
सुतका जब ही यह हाल हन्त।
मैं समझ नहीं पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

(२)

परसेवा जिसका एक ध्येय,
तनकी जिसको परवाह नहीं !
मानव मानवको खींच रहा,
यशकी जिसको कुछ चाह नहीं !

भूखे नंगे बच्चे फिरते,
मुँहसे न निकलती कभी आह।
रोटी-रोटीका जटिल प्रश्न,
जिसको करता प्रतिक्षण तबाह।

भारत माँके इन पुत्रोंका,
इस तरह जहाँ हो विकल अन्त।
मैं समझ नहीं पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

(३)

आ गया द्वार पर वह देखो,
दिख रहा क्षीण कंकालमात्र !
औरत बच्चे सब भूख-भूख,
चिल्लाते करमें लिये पात्र !

पर नहीं तरस हम खाते हैं,
कह देते जा आगे बढ़ जा!
पा रहा किया जो कुछ तूने,
कल मरता था अब ही मर जा।

इस तरह भूखकी ज्वालामें,
जलते रहते प्रतिक्षण अनन्त।
मैं समझ नहीं पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

(४)

इस तरफ गगनचुम्बी आलय,
जिनमें रहते दो-तीन प्राण!
मानवताका उपहास यहाँ,
मानवता बैठी मूर्तिमान।

दूसरी तरफ हम देख रहे,
टूटी कुटियापर घास-फूस।
बकरी भेड़ोंकी तरह सदा
जन रहते जिनमें ठूँस-ठूँस!

इस तरह विषमताकी ज्वाला,
होती जाती प्रतिक्षण ज्वलन्त।
मैं समझ नहीं पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

(५)

दाने-दानेको तरस जहाँ,
बच्चे बूढ़े दे रहे प्राण।
पथपर शवका लग रहा ढेर,
गृह स्वर्ग तुल्य हो गये श्मशान।

द्रौपदि, सीता, सावित्री-सी,
कुल-वधुएँ क्या कर रहीं आज।
तन बेच रहीं दो टुकड़ोंपर,
हो गया पतित मानव समाज।

दो-दो आनेमें पुत्रोंको,
माँ बेच रही हो जहाँ हन्त।
मैं समझ नहीं पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

श्री सुमेरुचन्द्र शास्त्री, 'मेरु'

आप बहराइच (यू० पी०)के रहनेवाले हैं। व्याकरण, न्याय और साहित्यके विद्वान् हैं। खड़ी बोलीमें सवैया आदि छन्दोंमें बहुत सुन्दर रचना करते हैं। स्थानीय साहित्यिक क्षेत्रमें आपका बहुत आदर है। यह 'कवि संघ' बहराइचके मन्त्री हैं। समस्या-पूर्त्ति विशेष रूपसे सफलतापूर्वक करते हैं।

शारदा-स्तुति

शारदे, निहारि दे कृपाकी कोर एक बार,
कल्पनामें केशव कवीन्द्र बन जाएँ हम ;
वीररस भूषणकी व्यञ्जित पदावलीकी
ओज-भरी प्रतिमाका रूप दिखलायें हम ;
'सूर' सी सरस रस-रोचनामें सिद्धहस्त
'तुलसी' सी चारु चरितावली सुनायें हम ;
'मेरु' कवि वीणापाणि वीणा झनकार दे तो
मञ्जुल पताका कविताकी फहरायें हम।

सुवर्ण उपालम्भ

नहिं दुःख जरा भी हुआ मनको
जब खानसे खोद निकाला गया ;
नहिं कान्ति मलीन भई तब भी
जब ज्वालमें डाल तपाया गया ;
'उफ़' भी निकली न जुबाँसे मेरी
जब रूप कुरूप बनाया गया ;
पर दुःख है तुच्छ महा घुँघची-
फलसे यह तोलमें लाया गया।

महाकवि तुलसी

राघव पुनीत पद-पद्मका पुजारी वह
भक्त मण्डलीका एक धीर वीर नेता था ;
अटल प्रतिज्ञामें था, अचल हिमाचल-सा
ज्ञान-कर्म-भक्तिकी पवित्र नाव खेता था।
अणु परमाणुओंमें सारे विश्व मण्डलोंमें
रामका स्वरूप देख 'राम' नाम लेता था ;
'हुलसी' का लाल हिन्द हिन्दी हियमाल वन
राम-पद प्रीतिका मनोज्ञ ज्ञान देता था।१

धन्य वह कंटकोंकी डाल अभिनन्दनीय
विकसित होता जहाँ सुमन सहास है ;
संसृतिमें धन्य वह पतझड़वाला ऋतु
जिसमें छिपा हुआ वसन्तका विलास है।
नर देह नश्वर भी जगमें प्रशंसनीय
क्रीड़ाका अनन्तकी वना जो अधिवास है ;
दीनोंका दलित देश धन्य कहलाये क्यों न
'तुलसी'-सा रत्न जहाँ करता प्रकाश है।२

कविवर, तेरी भारतीमें है अनोखी ज्योति
होती ज्यों पुरानी त्यों नई-सी दिखलाती है ;
विश्वका रुदन और सृष्टिका विशद हास
मृदुल 'पदावली' तो स्वयं वताती है।
एक-एक छन्दसे है वसुधा सुधामयी-सी
जीवन संगीतका अपूर्व गीत गाती है ;
अतएव मुग्ध होके आज कवि-मण्डली भी
तुलसी पदोंमें प्रेम-अंजलि चढ़ाती है।३

परिचय

हृदय हिमालय हिलेगा परिचय सुन
पूछो मत कैसी उर-वेंदनाका भार हूँ ;
विश्वकी समस्त सम्पदाएँ जिससे हैं दूर
क्रूर उस जगका तिरस्कृत मैं प्यार हूँ।
स्वप्निल जगत् मध्य तन्द्रिल बना ही रहा
केन्द्र करुणाका वह फेनिल असार हूँ ;
विग्रह विरोध अवहेलना परावृत हूँ
आहत हृदयका विकट हाहाकार हूँ।१

नित्य मन मन्दिरके प्रांगणमें खेल रही
पूरी जो न हो सकेगी ऐसी एक चाह हूँ ;
खण्ड-खण्ड हो चुके मनोरथके सेतु जहाँ
थाह हीन घोर दुःख सागर अथाह हूँ।
प्रतिरुद्ध हेतु हुए विफल प्रयत्न ऐसा
अविरल रूप अश्रु-धाराका प्रवाह हूँ ;
सुनना समझना विचारना है कोसों दूर,
ऐसे शान्त उरकी मैं कठिन कराह हूँ।२

कवि-गर्वोक्ति

अतुलित शक्ति मेरी कौन जानता है कहो,
चाहूँ तो त्रिलोकमें नवीन रस भर दूँ ;
भर दूँ महान् ज्ञान विपुल विलास हास,
विशद विकासका विचित्र चित्र धर दूँ।
विहँस न पाई जो प्रसुप्त सदियोंसे पड़ी
ऐसी भावनाओंका प्रकाश दिव्य कर दूँ ;
मेरी मति माने तो तुरन्त मन्त्र मारकर
देशके अशेष व्यपदेश क्लेश हर दूँ।१

विषम विषैले पार तथ्यसे हलाहलको
सार-हीन कर अस्तित्व भी मिटा दूँ मैं ;
जटिल समस्या या कि कठिन पहेली क्या है
विधिके विधानका भी गौरव घटा दूँ मैं।
शंखनाद जयपूर्ण पार हो क्षितिजके भी,
अचल हिमाचलको सचल बना दूँ मैं ;
कल्पना-किलेमें जिसे बाँधना असम्भव हो
सम्भव बना दूँ यदि शक्ति प्रगटा दूँ मैं।२

श्री अमृतलाल जी, 'फणीन्द्र'

श्री अमृतलालजी 'फणीन्द्र' टीकमगढ़ स्टेट और झाँसी जिलेके प्रमुख जनप्रिय साहित्यिक और सुकवि हैं। आपकी कविताएँ, कहानी, एकाङ्की तथा लेख सार्वजनिक पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं। आपकी रचनाएँ मार्मिक और अग्निगर्भ हैं। आपकी 'विश्वक्रान्ति' (नाटक) और 'रैयतकी लड़ाई' (आल्हा)—यह दो रचनाएँ शीघ्र ही प्रकाशित होकर पाठकोंके हाथमें पहुँचेंगी।

'फणीन्द्र'जी साहित्यिक ही नहीं, बल्कि एक उदीयमान राजनीतिक-कार्यकर्ता भी हैं। आप ओरछा स्टेटके एम० एल० ए० तथा 'ओरछा-सेवा-संघ'के सहायक मन्त्री हैं। आपसे साहित्य, समाज तथा देशको अनेक आशाएँ हैं।

क्रान्तिका सैनिक

मैं अग्रिम युगकी अमर क्रान्ति सैनिक, संसार हिला दूँगा,
मानवतापर मर मिटनेकी घर घरमें आग जला दूँगा।
ओ सम्हलो शोषण कर्ताओ, मानव वन मानव खाया है,
दानवता दलने मानवताका दूत सामने आया है।
तुमने मज़दूरोंको तरसाया मुट्ठी-मुट्ठी दानोंको,
टुकड़े-टुकड़ेपर कटवाया तुमने जीवित सन्तानोंको।
सड़कोंपर मुर्दा मज़दूरोंको देख-देख सुख पाते तुम,
कंगालोंकी भूखी टोली लख फूले नहीं समाते तुम।
सोचा तुमने भी नहीं तनिक आखिर इन्सान तुम्हींसे हैं,
ये तनिक अन्नके भूखे हैं ये तनिक माँड़के प्यासे हैं।
जब चला तुम्हारा बस तुमने मुँहमेंसे छीना कौर मेरा।
ठुकरा, ठुकराकर दण्डित अपमानित कर के छीना ठौर मेरा।

इस तरह अनेकों इस जर्जर सीनेसे कुटिल प्रहार सहे,
इन पके हुए फोड़ोंपर भी दुष्कृत्य अनेकों बार सहे।
नहिं सह सकता हर्गिज़ आगे दुर्दान्त दासताके वन्धन,
नहिं सुन सकता हर्गिज़ आगे पद दलित प्रजाके नित क्रन्दन।
हममें वल है उजड़ी वगियाको गुलशन पुनः वना देंगे,
लेकिन इन काले कृत्योंका तुमसे भरसक उत्तर लेंगे।
मेरे इस विकल धधकते दिलसे निकलेंगी चीत्कारें,
सत्ताधीशोंके महलोंकी हिल जाएँगी दृढ़ दीवारें।
मेरी वाहोंमें वह वल है सौदामिनि दिश-दिश तड़क उठे,
मेरी आहोंमें वह वल है विप्लवकी अग्नी भड़क उठे।
मेरे लघु एक इशारेपर अम्वरके तारे टूट पड़ें,
वस मेरे फ़क़त इशारेपर ज्वालागिर दिश-दिश फूट पड़ें।
मैं हिलूँ, डगमगा उठे भूमि, मुर्दा क़ब्रोंसे वोल उठें,
अँगड़ाई लेने लगे विश्व अविचल सुमेरु भी डोल उठें।
मैं वह सैनिक जिसको मरनेसे किंचित् होता क्षोभ नहीं,
माँकी गोदीकी ममता या यौवनके सुखका लोभ नहीं।
हम नहीं हिलाये जा सकते शस्त्रोंके कुटिल प्रहारोंसे,
अव नहीं दवाये जा सकते ज़ुल्मों औ अत्याचारोंसे।
हम साम्यवादके दूत हलाहलको हँस-हँस पीनेवाले,
हम आज़ादीके पूत मौतसे लड़-लड़कर जीनेवाले।
है आज फ़ैसला जगकी आज़ादीका या आलादीका,
जन रक्षामें उलझा सवाल है दुश्मनकी वरवादीका।
कर देंगे चकनाचूर शत्रुको इन फ़ौलादी पांवोंसे,
शासन जनताका जनतापर करवा देंगे निज प्राणोंसे।
रहने नहिं देंगे दुनियामें हम भाग्य विधाता ए पैसे,
कंगालोंकी भूखी टोली फिर आएगी आगे कैसे?

दानवता हत्याखोरोंकी मानवताके पद पकड़ेगी,
जो आज झुकाती हैं ताक़त वह झुक सिर पगमें रख देगी।
नहिं होगा कोई ग़रीब और सरमायादार नहीं होंगे,
साम्राज्य नहीं, फ़ासिज़्म, देश द्रोही गद्दार नहीं होंगे।
नहिं आएँगी नयनों समक्ष पैशाचिकताकी तस्वीरें,
हों खण्ड खण्ड, कड़कड़ा उठें दुर्दान्त हमारी जंज़ीरें।
फिर रह न सकेंगे क्रूर कहीं अवनीपर नवयुग आवेगा,
`कोने, कोनेमें मज़दूरोंका झण्डा जब फहरावेगा।

सपना

(इंगलैंडके चुनाव पर)

आज देखा एक सपना।

चिर युगोंसे चक्षु जिसको सजल हो हो ढूँढ़ते थे,
देखता हूँ आज, जिसकी यादसे अरि घूरते थे।
दासताके दुर्ग ढहते भूमि लुण्ठित ताज देखे,
जालिमोंकी छातियोंपर गरजते मुहताज देखे।
स्वर्ण सिंहासन उलटते धूलिमें रवि रश्मि देखी,
विश्वके श्रमजीवियोंकी विजयकी प्रतिमूर्ति देखी।
झूमती है निराभूषण क्रान्तिकी मन हरन प्रतिमा,
कालिमाको चीर लालीकी वही शत रश्मि आभा।

तान घूँसे कह रहे सब—
जहाँ अपनी, विश्व अपना,
आज देखा एक सपना।

श्री गुलाबचन्द्र, ढाना

आप सागर ज़िलेके ढाना ग्रामके निवासी हैं। अनेक विषयोंकी जानकारी रखनेके अतिरिक्त साहित्यसे आपको विशेष रुचि है। अपने यहाँके राजनैतिक क्षेत्रमें भी ये सक्रिय भाग लेते हैं और जेल-यात्रा कर आये हैं। कविता अच्छी कर लेते हैं। अन्तरकी अनुभूतिकी व्यंजना कम है।

चन्द्रके प्रति

निशाकी नीरवता कर भंग
गगनमें आते हो चुपचाप,
विश्वको देते क्या उपदेश
बताओ, हे राकापति, आप ?

सूर्यकी प्रखर रश्मियोंसे
जगत् सन्तापित होता नित्य,
उसे फिर शीतलता देना
निशापति, तेरा ध्येय पवित्र।

रंकसे राजाओं तक सदा
एक-सा है तेरा व्यवहार,
प्रवर्द्धित होते हो हर रोज़
सुधाकर, करते हो उपकार।

तुम्हें कहते हैं कवि सकलंक
बड़ा निष्ठुर है यह व्यवहार,
किन्तु मुखकी उपमा देकर
किया करते हैं कुछ प्रतिकार।

नित्य होते जाते कृश-काय
बताओ, हे शशि, है क्या बात,
कौन-सी दुश्चिन्तामें आह
बनाते हो अपना कृश गात?

विभाजित कर रक्खा क्यों व्यर्थ
तारिकाओंमें अपना सार,
इसीसे काला है क्या हृदय
जिसे लखता सारा संसार?

पद्म-कलिकाएँ मुरझाकर
प्रफुल्लित होते थे, राकेश,
इसीसे प्रतिद्वन्द्वी तेरा
बना है क्या वह चण्ड दिनेश।।

इसीसे दुर्बल होकर, इन्दु
एक दिन खोते निज सम्मान,
सिखाते दुनियाको यह पाठ
मानका होता यों अवसान।

सफल जीवन

आँख वह होती न बिलकुल
जो न पर दुख देख रोती,
काम उसका क्या हुआ
जो स्वयं सुखमें तृप्त होती ?

लाभ क्या है उन करोंसे
जो न गिरतेको उठायें ?
या कि बन दानी जगत्‌में
कीर्ति-यश अपना बढ़ायें।

हैं श्रवण वे धन्य जो
आवाज़ सुनते कातरोंकी,
वे गुहा हैं जो कि सुनते
रागिनी मंजुल स्वरोंकी।

वह हृदय है नामका बस
जो न भावोंसे भरा हो,
देशका अनुराग जिसमें
पूर्णतः लहरा रहा हो।

व्यर्थ है वह जन्म लेना
जो जिये अपने लिये ही,
धन्य हैं वह मृत हुए जो
सिर्फ़ औरोंके लिये ही।

डॉ० शंकरलाल, इन्दौर

डा० शंकरलालजी काला, डी० आई० एम०, इन्दौर, मध्यभारतके उदीयमान हिन्दी कवि और लेखक हैं। आपकी रचनाएँ 'जीवनप्रभा', 'जैनमित्र' और 'जैनबन्धु' आदि पत्रोंमें प्रकाशित होती रही हैं। वर्त्तमानमें आप 'आत्मबोध' संस्कृत ग्रन्थका हिन्दी पद्यानुवाद कर रहे हैं। आप बालकोंके लिए ओजमयी सुन्दर रचनाएँ भी करते हैं। उदाहरण दिया जा रहा है।

आज़ादी

भोले भाले बालक, आओ, मानस मन्दिरके आधार ;
जीवनके तुम ही हो साथी, तुम हो देव, अरे, साकार।
मांस पिंडके तुम हो पुतले, राष्ट्र-सारिणीके पतवार ;
तुम हीको अपने जीवनमें इसका करना है उद्धार।
सेनानी बन समर सैन्यमें तुमको ही लड़ना होगा ;
गाँधीकी आँधीमें तुम्को लघु तृण-सा उड़ना होगा।
समय नहीं आता है, बालक, समय नहीं देखा जाता ;
जीने-मरनेके प्रश्नोंको कौन उपेक्षित बतलाता।
आओ, आओ, बालक वीरो, आज़ादीका जंग लड़ें ;
कहीं रुकें ना कहीं भगें हम विद्युत्के बल आज बढ़ें।
जन्मसिद्ध आज़ादी जगकी इसके बल सब देश खड़े ;
आज उसी आज़ादीके हित बोलो अब हम क्यों न लड़ें ?
बाल बन्धुओ, नहीं हमारा देश रहेगा फिर परतन्त्र ;
जगतीके कण-कणमें फूँकें आज़ादी जीवनका मन्त्र।
झंडा ऊँचा करो देशका आज़ादी अब पानेको ;
वीर भूमिके बालक, वीरो, जीवनमें सुख लानेको।

मानवके प्रति

अरे मानव, तू अब तो देख
पलकसे ढपे युगल-पट खोल
अहर्निश बीत रहा है आज
समय तेरा सबसे अनमोल।

समझ जीवनमें इसका मूल्य
यही जीवनका जाग्रत् प्राण
इसे जो खोते हैं निष्काम
बने फिरते हैं वे म्रियमाण।

समयकी मधुर साधना साध
प्राण अपनेपर बाजी खेल
उतर पड़ रण-आँगनके बीच
देश-हित अपना देह ढकेल।

खिलाड़ी करना होगा खेल
छके वैरी-दल सहसा देख
बने प्यारा भारत स्वाधीन
नहीं हो पर-बन्धनकी रेख।

मिटा दे अन्धकार अज्ञान
करा दे सबको सच्चा ज्ञान
जुटा जीनेके साधन नित्य
कला-कौशलका ताना तान।

मिटा रोटीका व्यापक प्रश्न
बना भारतको शिखरारूढ़
नहीं तो निश्चित ही यह जान
एक दिन देश जायगा बूड़।

बाबू श्रीचन्द्र, एम० ए०

बाबू श्रीचन्द्र जैन समथर राज्यान्तर्गत अम्मरगढ़ नामक ग्रामके निवासी हैं। बचपनसे ही आपको कवितासे प्रेम है। आपको करुण-रसप्रधान कविताएँ प्रिय हैं। आपकी अनेक कविताएँ जैन पत्रोंमें प्रकाशित होती रहती हैं। आप सुन्दर कहानियाँ भी लिखते हैं। कुछ लेख आपने 'जयपुर जैन-कवि' नामक शीर्षकसे लिखे हैं। आपकी कविताएँ मार्मिक और प्रसाद-गुणपूर्ण हैं। 'सामायिक पाठ'का आपने पद्यानुवाद किया है जो प्रकाशित हो चुका है। आपकी रचना 'चन्द्रशतक' प्रकाशित हो रही है। आपका कविता कहनेका ढंग बहुत सुन्दर है।

गीत

ये पागल मनकी आशाएँ;
मेरी उत्कट अभिलाषाएँ।

गिरि-शृंगोंपर सरस कमल हों, रस निकले रेणूके कणमें;
विह्वलतामें बसे सान्त्वना, हो प्रमोद जगके चिन्तनमें।
यह क्षण-भंगुर जग निश्चल हो, राग वेदनाके स्वरमें हो;
विभीषिकाकी रणस्थलीमें रंगभूमिका मृदुल सृजन हो।
मानव मात्र देव बन जावें, सभी दीन वैभव-सुख पावें;
हो ममत्व पाषाण-हृदयमें विषम गरल जीवन बन जावें।
प्रस्थित यौवनके सौरभमें झंकृत अविनश्वर नित रव हो;
लहरोंसे जग सागर तरना विह्वल मानवको सम्भव हो।

ये पागल मनकी आशाएँ;
मेरी उत्कट अभिलाषाएँ।

आत्म-वेदना

मेरे कौन यहाँ पोंछेगा आँसू, हा, अञ्चलसे ,
पारस्परिक सहानुभूति जब भरी हुई है छलसे ?
समता सीखें यहाँ भला क्या, ईर्षा-वश हो करके ,
सुखका अनुभव यहाँ करें क्या कटु आहें भर-भरके ।
धर्म हमारा कहाँ रहेगा जब अधर्मने आकर ,
मानवताका नाश किया है पशुताको फैलाकर ।
जिधर देखिये उधर आपको दिखलाते सब दीन ,
धन-शोभा अब कहाँ रहेगी जब जग हुआ मलीन ?
पास पास करके हमने क्या कर पाया है पास ,
तिरस्कार अपमान उपेक्षा या कलुषित उच्छ्वास ?
पतझड़के पश्चात् नियमतः आती मधुर वसन्त ,
पर पतझड़के बाद यहाँपर आया शिशिर अनन्त ।

दोहावली

जीवनभर रटते रहे, हे चातक , प्रिय नाम ;
मैं तो कभी न ले सका, हा, प्रिय नाम ललाम ।१
करकी रेखा देखकर, मनकी रेखा देख ;
करकी रेखासे सतत, मनकी रेख विशेष ।२
निर्मोही बनना चहे, तू मोहीको पूज ;
मैल तेलसे धो रहा, हा, तेरी यह सूझ ।३
बैठ महलमें मूढ़ तू, करत पथिक उपहास ;
कबसे पतन बता रही, तेरी उठती साँस ।४

['चन्द्रशतक'से

श्री सुरेन्द्रसागर जैन, साहित्यभूषण

आपकी जन्म-भूमि दलिपपुर (मैनपुरी) है और वर्तमान निवास कुरावली।

आपकी शिक्षा मैट्रिक और साहित्यभूषण तक ही हुई है, फिर भी कवित्वका बीज आपमें जन्मजात है। आपकी रचनामें प्राञ्जल भाषा, गम्भीर भाव और मधुर कल्पनाओंका सुन्दर सम्मिलन है।

परिवर्तन

कहाँ वह हँसता-सा मधुमास ?
कहाँ वह स्वर्णिम आज विहान ?
रुदनका होता ताण्डव नृत्य,
प्रात छाता तम-तोम महान्॥

उषाकी मंजुल मृदु मुसकान,
मुदित करती मानवके प्राण।
दिशाओंमें अब है प्रच्छन्न,
हुए शोकातुर मानव म्लान॥

नीड़में विहग कूजते प्रात
और गाते थे सुन्दर राग!
कहाँ वह गए राग अभिराम ?
खगोंने धारण किया विराग!!

चिपटकर लता वृक्षके गात,
समझती थी अपनेको धन्य।
और सौन्दर्य-सिन्धुकी राशि,
समझती यौवन स्वीय अनन्य।।

किन्तु वे आज विरस कृश गात,
मधुरिमा हुई क्षीण अभिसार।
चिपटती नहीं वृक्षसे आज,
समझती यौवनको है भार।।

अहा ! वह तरु छायायुत शीत,
पथिक जिसमें करते विश्राम।
मनों भव-दव-दाहोंसे तप्त,
आज अनुतापित है निष्काम।।

नयनमें था जो वीरोल्लास,
देखनेको अभिनव अभिचाव।
आज उनमें नीलमके सूत्र,
दीखते सचमुच हुआ अभाव।।

अहा ! गोरेसे शिशु-मुख-हास्य,
मधुर करते थे हास्य विकीर्ण।
सहज बरबस पाहन उर तलक,
खींच लेनेमें थे उत्तीर्ण।।

उन्हींपर पीत-रंग मसि आज,
पोतती अपनी कीर्ति अपार।
भूल बैठे चंचलता हास,
विरस-सा उनको आज निहार।।

घटाएँ विपदाकी छा घोर !
कर रहीं वरसा हैं घनघोर।
हुआ पीड़ित है अग-जग आज,
दुखोंका नहीं कहीं है छोर !

हुआ संत्रस्त आज है लोक,
समझता पीड़ामय संसार।
यहाँ केवल जीनेका नाम !
हुआ है जीवन भी तो भार !!

अरे, ओ परिवर्तन नृपराज !
किया प्रसरित अपना साम्राज्य।
तुम्हीं लख लो उन्नति-अवसान,
प्रजाका स्वीय तुम्हारे राज्य ॥

अरे, सुख-दुखके तुम करतार !
रीझते हो जिसपर प्रिय आप।
उसे करते हो श्री-सुख पूर्ण,
और करते हो मोद-मिलाप ॥

खीजते जिसपर हो तुम ! आर्य,
दिखाते उसको नाना दुःख।
अरे ! उसको हो तुम अभिशाप,
छीन लेते उसके सब सुक्ख ॥

तुम्हारी संज्ञा अहो महान् !
कभी लघु कभी विराटाकार।
तुम्हींसे तुंग शिलाएँ शीर्ण
कभी बनती प्रांगण आकार ॥

जहाँपर थल-अंचल विस्तार,
वहाँपर लहराते हो सिन्धु।
और फिर सार्थक करने नाम,
स्वयं तुम कहलाते हो सिन्धु॥

तुम्हें नहिं व्रीड़ाका भय रंच,
छद्मभेषोंसे रचते जाल।
धूल सिकता-युत कर मरु थान,
सुखा देते हो जलधि विशाल॥

विवर्तित प्रातर् ऊषा-काल,
कभी संध्यामय करके आप—
तमिस्राका देते हो रूप,
अहो ! परिवर्तन हो या शाप?

अरे, तुम स्रजनहार, पर हन्त,
सर्व व्यापक हो अहो अनन्य !
जगत्-अवलम्बन ! हे जग-दूर !
न कुछ हो, तुम सब कुछ हो, धन्य !

श्री ज्ञानचन्द्र जी जैन, 'आलोक'

श्री ज्ञानचन्द्रजी जिजियावन (झाँसी)के रहनेवाले हैं। वर्तमानमें आप स्याद्वाद-महाविद्यालय, काशीके स्नातक हैं। आपका साहित्यिक क्षेत्रमें यह प्रथम प्रवेश है। आपकी रचनाएँ सरल और सुबोध होती हैं। आशाहै, भविष्यमें "आलोक"जीकी आलोकपूर्ण रचनाओंसे माता सरस्वतीका मन्दिर अधिकाधिक आलोकित होगा।

किसान—

भारत भूके भूषण स्वरूप
स्वर्णिम टुकड़े वे अल्प ग्राम।
जो इधर उधर वीरान पड़े
हैं कहीं वसे दो-चार धाम।१

×

वे ही हमको देते जीवन
वे ही हम सबके कर्णधार।
उन सबमें रहनेवाले ही
देते हैं हमको अन्नसार।२

×

ये हैं किसान जो दिन-दिन-भर
करते रहते श्रम बेशुमार।
शिरसे एड़ी तक चूती है
जिनके तनमें नित स्वेद धार।३

गर्मीकी भीषण गर्मीमें
सहते दिनकरका तेज ताप।
भूखे-प्यासे हल हाँक रहे
जिनके दुःखोंका नहीं माप।४

×

है नहीं पैरमें जूती भी
शिरपर टोपीका नहीं नाम।
तनपर वस्त्रोंका है अभाव
अवशिष्ट सिर्फ है कृष्ण चाम।५

×

पानी पीनेको इन्हें एक
मिट्टीका फूटा बर्तन है।
खानेको मिलते चार कौर
ऐसा बेढव परिवर्तन है।६

इनके बच्चे रोते-रोते—
भूखे ही भूपर सो जाते।
उठनेपर जल्दीसे नीरस
कोदोंकी रोटी खा जाते।७

×

है दुग्ध और घृतका सुनाम
जिनको सुनने तक ही सीमित।
रोटी खानेकी सिर्फ आश
इनको करती रहती प्रेरित।८

×

बस पाँच हाथका इनका घर
वह भी है कच्चा जीर्ण शीर्ण।
ऊपरसे छाया जहाँ फूस
है अङ्ग-अङ्ग जिसका विदीर्ण।९

×

उसमें रक्खा चूल्हा कच्चा
रक्खी है चक्की वहीं एक।
है पड़ी वहीं टूटी खटिया
काली हन्डी भी पड़ी एक।१०

×

होती है खुजली इन्हें खूब
पैरोंमें फटीं बिमाई हैं।
ज्वरसे रहते ये सदा ग्रस्त
इसलिए कि भूखीं नारी हैं।११

×

इतनेपर मुखियाकी बिगार
करनी पड़ती बेचारोंको।
पैसे मँगनेपर पड़ जातीं
दो-चार जूतियाँ दुखियोंको।१२

×

वर्षामें इनका घर चूता—
सर्दीमें पड़ती खूब ओस।
गर्मीमें छप्पर फोड़ सूर्य-
पीड़ित करता पर नहीं जोश।१३

×

आता इनको, क्योंकि दरिद्र
चिन्तित होनेसे क्षीण काय।
बेचारे कर ही क्या सकते,
करते रहते बस हाय-हाय।१४

×

इस तरह दुखित, फिर भी, किसान
देते हैं हमको खूब अन्न।
पर हमें कहाँ इनका सुध्यान
क्योंकि, हम हैं अभिमान-छन्न।१५

×

रहते हम उन प्रासादों में—
अम्बर-चुम्बी जो हैं विशाल।
जिनके घर्षणसे लोक प्रकट
है चन्द्रराजका कृष्ण भाल।१६

×

पीनेको मिलता हमें दुग्ध
व्यञ्जन षट् रस संयुक्त खूब।
पोषक पदार्थ हम खाते हैं
जिनसे बढ़ता है खून खूब।१७

×

वस्त्राभूषण शिरसे पग तक
करते रहते शोभित शरीर।
बैठी रहती मानव समाज
इसलिए कि हम सब हैं अमीर।१८

×

पर ठाठ-बाठ इनके सारे
तेरी ही हिम्मतपर किसान!
इनका सुख भी अवलम्बित है
तेरी ही छातीपर किसान।१९

×

इनकी शोभा इनकी इज्जत
इनके सारे सुख अविनश्वर।
तेरे तनपर तेरे मनपर
तेरे धनपर ही हैं निर्भर।२०

×

उत्तुङ्ग महल, उन्नत विचार
तेरी ही दमपर होते हैं।
तेरे अनाजको खाकर ही
सुखकी निद्रामें सोते हैं।२१

×

टकटकी लगाये दिनकर भी
तेरी हिम्मतको आँक रहा।
तेरी ही दमको रे किसान!
संसार अखिलमें झाँक रहा।२२

×

इसलिए उठो सोचो समझो
ओ मेरे जीवनधन किसान!
तेरे ही ऊपर अवलम्बित
गान्धीका होना मूर्तिमान।२३

श्री मगनलाल जी, 'कमल'

आप एक उदीयमान प्रतिभाशाली कवि हैं। आपका निवास स्थान शाढौरा (ग्वालियर राज्य) है।

'कमल'जी बाल्यावस्थासे ही कवि-कर्ममें संलग्न हैं। अपनी अन्तर्वेदनासे प्रेरित होकर ही आप अपने कर्ममें प्रवृत्त होते हैं। यही कारण है जो "आहोंके हैं आघात, प्रिये" लिखनेके लिए आपकी क़लम सहज भावसे चल पड़ती है।

आशा है, एक दिन यह कवि-कलिका अपने सुवाससे साहित्यके उद्यानको अवश्यमेव सुवासित करेगी।

जौहरकी राख

१

आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?
दलित, पतित, कुचले जीवनका ही सूना संसार यहाँ है।
आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?

अत्याचार करेगा जो भी
अत्याचारी कहलायेगा,
शासक भी हो क्यों न जगत्का
पीड़ित दलसे दहलायेगा;
आहोंके शोलोंमें बोलो यौवनका सौन्दर्य कहाँ है ?
आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?

२

अरे इन्हीं अत्याचारोंसे
रंगा हुआ इतिहास पड़ा है,

शब्द, शब्द सन्देश दे रहा
कहाँ न्याय अन्याय लड़ा है;
पग, पगपर रोना ही है तो फिर पावन त्योहार कहाँ हैं ?
आज हृदयमें प्यार कहाँ हैं ?

३

उस पावन मेवाड़ भूमिपर,
अन्यायोंका प्यार पला था,
राजपूत ललनाओंका जहँ,
रूप और सौन्दर्य जला था,
धधकी थीं ज्वाला-मालाएँ जहाँ, आज प्रासाद वहाँ हैं !
आज हृदयमें प्यार कहाँ हैं ?

४

कभी नहीं भूलेगा भारत,
अरे बाग़ जलयानावाला,
पापी सर ओ डायरने जहँ,
वहा दिया था ख़ूनी नाला,
उसके रक्त-बिन्दुओंसे ही लिखा गया इतिहास वहाँ हैं !
आज हृदयमें प्यार कहाँ हैं ?

५

शासक वर्ग भवन कहता है,
भाग्यहीन खंड़हर हैं फूटे,
जिसे शृंखला समझा पागल,
वह तो सब बन्धन हैं टूटे,
मरघट कहते हैं हम जिनको, फैली जौहर राख वहाँ हैं !
आज हृदयमें प्यार कहाँ हैं ?

ऊर्मियाँ

श्री लज्जावती, विशारद

श्री लज्जावतीजी समाजकी उन जागृत महिलाओंमेंसे हैं जो यथाशक्ति देशकी सेवा और साहित्यकी साधनामें सदा तत्पर रहती हैं। आप जब मेरठमें थीं तो वहाँकी महिला-समितिकी मन्त्रिणी थीं और अब मथुरामें जहाँ आपके पति बा० जगदीशप्रसादजी ओवरसियर हैं, नारी समाजकी उन्नतिके कार्योंमें योग दान देती हैं। आप 'वीर जीवन' और 'गृहिणी कर्त्तव्य' नामक दो पुस्तकोंकी लेखिका हैं।

आपकी कविताओंमें विषयके अनुसार ही शब्दोंका चयन होता है, और भावोंमें गम्भीरता रहती है। वेदनाके भावोंको चित्रण करते हुए इनकी कविता विशेष रूपसे सजीव हो उठती है। 'फूल सुगन्धित तू चुन ले, शूलोंसे भर मेरी झोली' कितनी सुन्दर पंक्ति है!

आकुल अन्तर

मैं इस शून्य प्रणय-वेदीपर,
किन चरणोंका ध्यान करूँ;
मृत्यु-कूलपर बैठी कैसे
अमर क्षितिज निर्माण करूँ?

विश्वासोंपर बसा हुआ है,
जगके स्वप्नोंका संसार;
सखी, भाग्यकी अस्थिरताओं-
पर किसका आह्वान करूँ?

मेरी मार्गहीन यात्राएँ,
हैं अलक्ष्य गतिहीन, सखी;
ये मगमें करुणाके टुकड़े,
छोड़ इन्हें, मत बीन, सखी!

फूल सुगन्धित तू चुन ले,
शूलोंसे भर मेरी झोली;
पर आशा-लतिकाकी मादकतर
स्मृतियाँ मत छीन सखी!

सम्बोधन

जागृतिके उज्ज्वल मन्त्रोंसे
जीवन-सूत्र पिरो लो;
देश-भक्तिकी त्याग-तुलापर
अपना जीवन तोलो।

कर्मक्षेत्रमें लेकर आओ
वह स्वप्नोंका जीवन;
आदर्शोंमें परिणत हो फिर
शून्य भावना पावन।

तन मन धन न्योछावर करके
माँके बन्धन खोलो;
अर्पण हँस-हँसकर हो जाओ
भारतकी जय बोलो।

श्री कमलादेवी जैन, 'राष्ट्रभाषा-कोविद'

आप प्रगतिशील विचारोंकी शिक्षित महिला हैं। पंडित परमेष्ठीदासजी 'न्यायतीर्थ'की आप धर्मपत्नी हैं। आपने धर्म, न्याय और साहित्यका खूब मनन किया है और कविताक्षेत्रमें विशेष सफलता प्राप्त की है। आपकी कितनी ही साहित्यिक रचनाएँ उच्चकोटिकी हैं। कवि सम्मेलनोंमें आपको अनेक स्वर्ण और रजत-पदक भी मिल चुके हैं।

आप न केवल अच्छा लिखती ही हैं, बल्कि कविताएँ भी बहुत जल्द बनाती हैं। इनकी रचनाएँ 'सुधा', 'कमला' आदि साहित्यिक पत्रिकाओंमें निकलती रहती हैं। अभी राष्ट्रीय आन्दोलनमें आप जेल-यात्रा कर चुकी हैं। आपकी कविताएँ अलंकारयुक्त किन्तु सुबोध होती हैं।

हम हैं हरी भरी फुलवारी

दुनियाके विशाल उपवनमें हृदयोंकी कोमल डालीपर
खिले हुए हैं सुमन सुमतिके, जग मोहित है जग लालीपर
शोभित विश्ववाटिका न्यारी, हम हैं हरी-भरी फुलवारी ।१
सुरभि सर्व जगके उपवनमें महक रही सुगुणोंकी मधुमय
यह सन्देश सुनाती जगको, विचर रही होकरके निर्भय
हमसे ही जग शोभा सारी, हम हैं हरी-भरी फुलवारी ।२
शायद समझ रही इससे ही, पुरुष जाति हमको अबलाएँ
हरी-भरी फुलवारी होकर, कैसे हो सकती सबलाएँ
यह सबलोंकी भूल अपारी, हम हैं हरी-भरी फुलवारी ।३
पत्ते कोमल होनेपर भी जग-भरको छाया देते हैं
करते हैं उपकार जगत्‌का, पर न कभी बदला लेते हैं
तब फिर कैसे अबला नारी, हम हैं हरी-भरी फुलवारी ।४

महक उठा फूलोंसे उपवन

विघट गया तम तोम निशाका,
उषा नटी उठ करके धाई;
अलसाये अरुणाके दृग ले,
कलिकाओंके सम्मुख आई।

उन्हें जगाने हो हर्षित मन, महक उठा फूलोंसे उपवन।

ऊषाके मृदु आलिंगनसे,
कलियोंने भी आँखें खोलीं;
आलसका क्षय करनेके हित,
आँखें ओसविन्दुसे धो लीं।

मुस्काये फिर दोनों आनन, महक उठा फूलोंसे उपवन।

दृश्य देख दोनों सखियोंका,
नव प्रभातके रम्य पटलपर;
सुरभित कलिकाओंसे मिलने,
वायु, वेगसे आई चलकर।

करने कलियोंका आलिंगन, महक उठा फूलोंसे उपवन।

अपना तन सुरभित करनेको,
लिपट गई खिलती कलियोंसे;
फिर गुंजित भ्रमरोंको देखा,
हँसकर यह पूछा अलियोंसे—

'करते क्यों फूलोंका चुम्बन', महक उठा फूलोंसे उपवन।

विरहिणी

पिय न आये, पियूँ कब तक,
यह निरन्तर धैर्य-प्याला;
व्यथित मनको सान्त्वना दूँ,
किस तरह अब कहो आली।१

हृदय-दीपक हाथसे ढक,
चिर-समयसे जी रही हूँ;
मिलनकी आशा रखे,
ममता-सुधा-रस पी रही हूँ।२

किन्तु समता-सहचरी भी,
ऊबकर मुझसे किनारा;
कर गई, अब है न मुझको,
एक भी जीवन-सहारा।३

तप्त तनकी उष्म आहें,
हृदय-दीपकको बुझाने;
कर रही हैं यत्न भरसक,
आज इसपर विजय पाने।४

टिमटिमाता दीप यह,
बतला, सखी, कैसे बचाऊँ;
आशका अब डाल अंचल,
ओटमें कैसे छिपाऊँ?५

श्री प्रेमलता, 'कौमुदी'

'कौमुदी'जीका जन्म सन् १९२४ में दमोहमें हुआ। आप प्रसिद्ध जैन-कवि श्री पं० मूलचन्द्रजी 'वत्सल'की सुपुत्री हैं। आपके पति श्री रविचन्द्र 'शशि' भी एक सफल कवि हैं। इसीलिए कविताकी ओर आपकी सहज और सुलभ प्रवृत्ति है। आपने संस्कृतका 'सामायिक पाठ' पद्यानुवाद किया है, जो प्रकाशित हो गया है। आपकी कवितामें स्वाभाविकता है और सरसता भी। ये कविताका क्षेत्र व्यापक रखनेका प्रयास करती हैं।

गीत

मेरे नयनोंकी कुटियामें किसने दीप जलाये री,
नीरस सुप्त प्राण मेरे सहसा किसने उकसाये री !

आता सरिता जल-सा निर्मल,
मधुर मन्द सुरभित मलयानिल,
सजनि, आज किसके बिन मेरे वीन-तार अकुलाये री।

श्यामल रजनीके तारों-सी,
घन-विद्युत्के मनुहारों-सी,
उर नभमें किस तरल प्रतीक्षाके बादल घिर आये री।
मेरे नयनोंकी कुटियामें किसने दीप जलाये री॥

मूक याचना

देव, मैं बन जाऊँ अज्ञात।

शलभके पंखोंको छू-छू,
उन्हें कर-कर अमरत्व प्रदान,
दीप-लौके प्रेमी मुखपर,
सदा करवाऊँ जीवनदान।

उसीके सुखकी मंजुल छवि,
बनी इठलाऊँ निशा प्रभात।
देव, मैं बन जाऊँ अज्ञात।

किसीके आशापथकी धूल,
बनूँ, पथपर छितरा जाऊँ,
मिलन वेलापर प्रेयसिकी,
दूर जगमें बिखरा आऊँ।

विरहकी उत्सुकतामें डूब,
हँसूँ, झूमूँ पुलकित मधुगात।
देव, मैं बन जाऊँ अज्ञात।

श्री कमलादेवी जैन

आप जैन समाजके गण्यमान्य विद्वान् पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्लकी सुयोग्य पुत्री हैं। काव्य रचनाके लिए आपमें जन्मजात प्रतिभा है, जो समय और अनुभवके खरादपर चढ़कर हिन्दी-साहित्य-सुवर्णकी अँगूठीका सुन्दर नगीना होगी। सत्रह वर्षकी वयमें, उन्नत कल्पना और सरस शब्दोंके साथ सुन्दर भावोंको गूँथना आपके उज्ज्वल भविष्यका परिचायक है। आप संस्कृत और न्यायशास्त्रका विशेष अध्ययन करती हैं। आप साधारण विषयको भी भावोंकी पवित्रता द्वारा उज्ज्वल कर देती हैं।

रोटी

रोटी, फूली देख तुझे मैं,
फूली नहीं समाती हूँ ;
अपने मनकी बात सोचकर
मन ही मन हर्षाती हूँ।१

तू मेरे प्रिय भ्रात उदरमें,
जाकर ऐसा रक्त बना ;
मातृभूमिके लिए समयपर
तन अर्पण कर दे अपना।२

पूर्ण लालसा होवे मेरी,
यह वरदान माँगती हूँ ;
मेरे तप्त हृदयको शीतल
कर दे यही चाहती हूँ।३

पहले चारों ओर जहाँ
साम्राज्य शान्तिका था फैला ;
वृद्धि नित्य पाती थी 'कमला'
ज्यों पाती है 'चन्द्रकला' ।४

वहाँ दीन दुखियों भूखोंका
आज विलखना सुनती हूँ ;
भारतीय माँका सम्वोधन
'अवला' सुन सिर धुनती हूँ ।५

नायक वनकर मेरा भाई
सवका शुभ्र सुधार करे ;
देश-जातिकी करे समुन्नति,
अपना भी उद्धार करे ।६

पथसे विचलित मेरा भाई
कभी नहीं होने पावे ;
सज्जनता - रूपी साँचेमें
ढले, सदा ढलता जावे ।७

इतनी कृपा करो, हे रोटी,
यह उपकार न भूल सकूँ ;
जीवन वने वन्धुका उज्ज्वल,
कीर्ति श्रवणकर फूल सकूँ ।८

निराशाके स्वरमें

साथी, मिट गये अरमान।

कण्ठ शुष्क हुआ, करूँ क्या भग्न स्वर सन्धान ;
साथी, मिट गये अरमान।
ओज अब तनमें नहीं है, स्फूर्ति इस मनमें नहीं है,
उचित अनुचितका नहीं है अब हृदयको भान ;
साथी, मिट गये अरमान।
सूझता पथ ही नहीं है, सोच लूँ पर मन नहीं है,
हो चुका है लुप्त मेरा हित-अहितका ज्ञान ;
साथी, मिट गये अरमान।
लुट गया मैं आज, साथी, रखो मेरी लाज साथी,
हुआ अब मेरे हृदयसे सौख्यका अवसान ;
साथी, मिट गये अरमान।
प्यार धोखेसे जगत्ने लिया, कुचला निर्दयीने,
मिला जीवनमें मुझे बस, दुःखका वरदान ;
साथी, मिट गये अरमान।
मिला है यह दर्द जगमें, सह सकूँगा अब न कुछ मैं,
आज पागल हो रहा हूँ, जगत्से अनजान ;
साथी, मिट गये अरमान।
खोजता हूँ उस निठुरको, चल दिया जो छोड़ मुझको,
विलखता हूँ आज पथ-पथ ओ मेरे भगवान् ;
साथी, मिट गये अरमान।
नाशके दुःखसे कभी दवता नहीं निर्माणका सुख,
मानते तो, प्रभो, मेरा कीजिये उत्थान ;
साथी, मिट गये अरमान।

श्री सुन्दरदेवी, कटनी

यद्यपि श्री सुन्दरदेवीने कविताके प्रांगणमें अभी हाल हीमें पदार्पण किया है, फिर भी अच्छी प्रगति कर ली है। यह कवितामें हृदयके उद्गार सीधे और सरल रूपमें इस प्रकार व्यक्त करती हैं कि इनके अनुभवकी गहराईका अनुमान लग सकता है। आपकी शैली आधुनिक और वेदना-प्रधान है।

आप कटनी निवासी स० सिं० धन्यकुमारजीकी बहन हैं। आपका विवाह जबलपुरके ऐसे घरानेमें हुआ है, जो देशभक्ति और त्यागके लिए प्रसिद्ध है।

यह दुःखी संसार

आजका संहार कल जीवन बनेगा।

इस दुखी संसारमें जितना बने हम सुख लुटा दें ;
बन सके तो निष्कपट मृदु प्यारके दो कण जुटा दें।
हर्षकी सौ ज्वाल छातीमें जलाकर गीत गायें ;
चाहते हैं गीत गाते ही रहें हम रीत जायें।
नहिं रहे यदि झोपड़ा सन्मार्ग तो फिर भी रहेगा ;
आजका संहार कल जीवन बनेगा।

हम कि मिट्टीके खिलौने, बूँद लगते गल मरेंगे ;
हम कि तिनके, धारमें बहते शिखा छू जल मरेंगे।
कौनसा वह बुलबुला-जल है न जो अंगार होगा ;
नाशकी कटु किरणका युग-सूर्यसे शृंगार होगा।
धारमें बहना कहाँ तक सोचना यह भी पड़ेगा ;
आजका संहार कल जीवन बनेगा।

जब समुन्दर बढ़ रहा होगा बड़ी भगदड़ मचेगी ;
और बड़वानल निगोड़ी सामने आकर नचेगी।
क्या बुझायेंगे कि 'फायर वर्क्स' मन मारे जलेंगे ;
मौत-रानीके यहाँ उस दिन बड़े दीपक जलेंगे।
आह ! क्या दुर्दिन अभी वह और भारतमें बढ़ेगा ;
आजका संहार कल जीवन बनेगा।

वह प्रलयका एक दिन प्रतिदिन सरकता आ रहा है ;
काल गायक गीतियोंमें ही सही पर गा रहा है।
उस महासंगीतका हर प्राणसे कम्पन लहरता ;
नृत्यकी-सी शान्ति पाता एक क्षण जो भी ठहरता।
क्या कभी सम्भावना है दुष्ट दुर्दिन वह टलेगा ;
आजका संहार कल जीवन बनेगा।

जीवनका ज्वार

अब मैं ढूँढ़ूँ किधर प्रेमका वह चिरनिधि साथी तारा ;
अविरल बहती इन आँखोंकी रोके कौन प्रबल धारा ?
दुग्ध भरा था जिस प्यालेमें फूट गया वह मधु-प्याला ;
मेरे अन्तस्तलमें बहती चारों धाम विकट ज्वाला।
यौवनका कर्पूर रहा जल आज प्रणयकी ज्वालामें ;
अरे पपीहा प्राण जगा जा इन्हीं पियासे प्राणोंमें।
विफल प्रणयिनीका अभाग्य है, हैं टूटे नभके तारे ;
कैसे वार सहूँ जीवनका अन्तिम घड़ियोंके सारे।

श्री मणिप्रभा देवी, रामपुर

श्री मणिप्रभा देवीको ही इस बात का मुख्य श्रेय है कि उन्होंने वर्तमान जैनसमाजकी महिलाओंको कविता रचनेके लिए प्रेरणा दी और उनकी कविताओंको 'जैन महिलादर्श' नामक मासिक पत्रमें 'कविता मन्दिर'के अन्तर्गत छाप छापकर लेखिकाओंको प्रोत्साहित किया। आप प्रारम्भसे ही कविता-मन्दिरकी संचालिका हैं, जिसे योग्यतासे सम्पादित कर रही हैं।

आपने स्वयं भी बहुत सुन्दर कविताएँ की हैं जिनमें ओज और माधुर्य दोनों ही गुण पाये जाते हैं।

आप सुकवि श्री कल्याणकुमार 'शशि'की धर्मपत्नी हैं।

सोनेका संसार

जीवनकी नन्ही नैया
डोल रही है जग-जलमें,
परिवर्तन हो रहे नये
नित जल-थल औ अंचलमें।
निरख-निरखकर नया रूप
देखा मैंने पल-पलमें,
नूतन सागर बना एक
इस मेरे अन्तस्तलमें।
कम्पन-सा हो रहा प्रकट
है मेरे मन निश्चलमें,
लक्ष्य निकट है, लक्ष्य दूर
है मेरे कौतूहलमें।

यहीं सोच है कैसे जाऊँ
गहरे सागरके उस पार,
नाथ दयाकर तुम बन जाओ
मेरी नैयाके पतवार।

× × ×

प्राचीने स्वर्णिलता पाई,
मुझमें भी नव लाली आई,
उपवनमें कलिका मुसकाई,
जीवनके कोने-कोनेमें
हुआ मधुर संचार।

सुन्दर नव जीवनका मधुरस,
'प्रभा' पूर्ण मलयानिलका यश,
आज हुआ सबका सामंजस,
बन्धन विगत हुए छिन्नित हो
खुला मुक्तिका द्वार।

मौन मन्द रवमें मुसकाया,
मुझपर नव विकास बन छाया,
बहुत खोजकर मैंने पाया,
रहे सदा अक्षुण्ण हमारा
सोनेका संसार।

श्री कुन्थकुमारी, बी० ए० (ऑनर्स), बी० टी०

आप एक प्रतिभाशालिनी और विदुषी महिला हैं। आपने अंग्रेज़ी साहित्यके विशाल अध्ययनके साथ मातृभाषाके साहित्यका भी मनन किया है। देहली और पंजाब विश्वविद्यालयकी बी० ए० और बी० टी० परीक्षाओंमें आपने प्रान्तकी महिलाओंमें सर्वप्रथम पद और स्वर्णपदक प्राप्त किया था। इन्होंने अंग्रेजी-हिन्दीके अनेक अखिल भारतीय वाद-विवादोंमें भी प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया है। आप दो वर्ष तक लाहौरके हंसराज महिला ट्रेनिंग कालेजमें बी० टी० श्रेणीकी प्रोफ़ेसर रह चुकी हैं।

श्री कुन्थकुमारी हिन्दीमें लेख, कहानी और कविताएँ लिखती हैं। आपकी कविताओं और लेखोंमें रचनाका सौन्दर्य और कल्पनाकी कोमलताका दर्शन होता है। आप प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी, देहलीके जैन कन्या-शिक्षालयके प्रमुख संस्थापक पंडित फतेहचन्द जैन ख़ज़ांचीकी पुत्री और श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०की धर्मपत्नी हैं।

मानसमें कौन छिपा जाता ?

मानसमें कौन छिपा जाता ?

जीवनमें ज्वार उठा करके, मानसमें कौन छिपा जाता ;
मेरे उन्माद-भरे मनको अनजानेमें बहला जाता !
मानसमें कौन छिपा जाता ?

दे क्षणमें सुख-दुखकी झाँकी, इस पल विराग, उस पल रागी ;
उठती मिटती-सी पीड़ाको उलझा जाता, सुलझा जाता।
मानसमें कौन छिपा जाता ?

शशि रजत-सुधा बन रजनीमें मादकता लहराकर जीमें ;
किसका माधुर्य तेज बनकर रवि-पथपर बिखर सिमट जाता ।

मानसमें कौन छिपा जाता ?

भ्रमरसे

भ्रमर, तू स्वाधीन उड़ जा ।

विश्वके चंचल हृदयमें रमे तेरे प्राण भोले,
इस मधुर संसारके मृदु तालपर तव गान डोले,
वायुकी उन्मुक्त लहरीने सुनहले पंख खोले,
आज तू निर्बन्ध होकर विश्वमें सब ओर उड़ जा ।

तव हृदयके स्पन्दसे ही हो चली प्रमुदित कली,
सरस जीवन कर समर्पित धूलमें मिलने चली,
नित नई-सी कलीके उरमें मधुर आसव ढली,
ले मधुप, पी आज जी भर, और कल स्वाधीन उड़ जा ।

नियतिके उरमें लिखा है नित्य परिवर्त्तन हमारा,
नियम बन्धनसे रुकेगी क्या प्रणयकी वेगधारा,
कठिन नीरस परिधियोंमें सत्य सुन्दर प्रेम हारा,
तू मनोरथके मनोरम पंख पा, निश्चिन्त उड़ जा ।
भ्रमर, तू स्वाधीन उड़ जा ।

श्री रूपवती देवी, 'किरण'

आप सी० पी०के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी फागुलकी विदुषी पुत्री हैं और जबलपुरके एक प्रतिष्ठित घरानेमें ब्याही हैं। प्रतीत होता है कि आपका हृदय प्रकृतिके सौन्दर्यसे प्रभावित होकर कविताकी ओर प्रवृत्त होता है। आप सामाजिक विषयोंपर भी अच्छा लिख लेती हैं।

यह संसार बदल जायेगा

प्रलय-राहुने ग्रसा चन्द्रमा,
हुई अमाकी निशा पूर्णिमा;
चन्द समयके बाद चन्द्र फिर,
निखिल ज्योत्स्ना छिटकायेगा;
यह संसार बदल जायेगा।

महानाशका निठुर प्रहर यदि,
भारतको गारत कर देगा;
जब निर्माता गान्धी जी हैं,
तो फिर क्यों न उदय आयेगा ?
यह संसार बदल जायेगा।

झंकृत होगी वह स्वर-लहरी,
आत्मशक्ति जागृत हो जिससे;
करे भेंट नव जीवन-ज्योती,
जय-संगीत विश्व गायेगा;
यह संसार बदल जायेगा।

उस पार

निर्जन और शून्य-सा थल हो,
दूर बहुत ही कोलाहल हो,
पर निर्झरके अविरल रवसे,
रहित नहीं वह प्यारा वन हो,

ऐसा सुन्दर शुभ प्रदेश हो,
हो अपना घर द्वार;
छलिया जगके पार।

मलय समीर जहाँ करती हो,
हर्षित औ' विषाद हरती हो,
इस मायावी जगकी दूषित,
पवन जहाँ नहिं आ सकती हो,

ऐसी मन्द सुगन्धित प्यारी,
मिलती रहे बयार;
छलिया जगके पार।

पर्वत - मालाएँ हों फैली,
हों जिनकी मृदु वेल सहेली,
चन्द्र-सूर्यकी चंचल किरणें,
करती हों क्रीड़ा लुक-छिपकर,

सुदृढ़ प्राकृतिक वही हमारा,
हो अखंड संसार;
छलिया जगके पार।

रवि शशि तारे नील गगनमें,
जलप्रपात तरु पृथ्वीतलमें,
पक्षिगणोंका सुललित गुंजन,
तरु टहनीका अभिनव वन्दन,

मन-रंजन कर पावेंगी नित,
विमल प्रेम भंडार;
छलिया जगके पार।

सखी, चल, छलिया जगके पार।

श्री चन्द्रप्रभा देवी, इन्दौर

आप विख्यात व्यवसायी रावराजा सर सेठ हुकुमचन्दजीकी पुत्री हैं। आपको कवितासे प्रेम है और इस ओर उनका अब तकका प्रयास सफल भी हुआ है। आशा है आपकी प्रतिभा भविष्यमें अधिकाधिक विकसित होगी।

रणभेरी

तुम नवजवान हो, ध्यान रहे,
नस-नसमें साहस भान रहे,
निज देश-धर्मकी शान रहे,
उन्नतिका श्रेष्ठ वितान रहे,
संगठन शंख वज जाने दो,
रण-भेरी मुझे वजाने दो।

वीरो, भारतका मान रहे,
भारत वीरोंकी खान रहे,
माता-बहनोंकी लाज रहे,
सद्गुण पूरित सब साज रहे,
पहलेकी स्मृति हो आने दो,
रण-भेरी मुझे वजाने दो।

उज्ज्वल भारतकी शान तुम्हीं,
अरमान तुम्हीं, अभिमान तुम्हीं,
दुखिया माताके प्राण तुम्हीं,
सर्वस्व तुम्हीं, उत्थान तुम्हीं,
यह भाव पुनः बिखराने दो,
रण-भेरी मुझे वजाने दो!

श्री छन्नोदेवी, लहरपुर

जागरण

(१)

उठो क्रान्तिका गान हो रहा, निद्राका यह राग नहीं,
मची रक्तकी होली, देखो, यह वसन्तका फाग नहीं;

भीष्म ज्वालकी ये चिनगारी समझो पद्म-पराग नहीं,
यह मरणस्थल युद्धस्थल है, कुसुमित सुरभित बाग़ नहीं;

देखो उधर, व्योममें, कैसे विपदाओंके बादल हैं,
शान्तिपूर्ण अब रात नहीं, दुर्दिनके बजते पायल हैं?

(२)

देखो यह अडोल धरणीधर कैसा थरथर काँप रहा,
देखो, रक्तिम देह लिये रवि अस्ताचलको भाग रहा;

हो उद्दण्ड प्रचण्ड आलसी मारुत भी फुंकार रही,
उग्र रूप धर धरा अग्निके, आज उगल अंगार रही;

सुनो, विश्व-विद्रोही बनकर विप्लवके हैं गाते गान,
महाप्रलयका आवाहन है 'उठो उठो, हे श्रेष्ठ महान्!'

श्री कुसुमकुमारी, सरसावा

नाविकसे

(१)

देखो नाविक मेरी नैया,
धीरे - धीरे खेना;
मृदु आशाओंका बोझा है,
कहीं भिड़ा मत देना;
थरथर यह मन काँप रहा है,
कहीं गिरा मत देना;
नैया धीरे-धीरे खेना।

(२)

भव-समुद्रकी अगणित बाधा,
लहरों का तूफ़ान;
यश-अपयशके झंझा झोंके,
बीच - बीच चट्टान;
चट्टानोंसे बचकर चलना,
कहीं न टकरा देना;
नैया धीरे-धीरे खेना।

(३)

हाथ तुम्हारे काँप रहे हैं,
इनको जरा थमाओ;
छूट पड़े पतवार न देखो,
पानी परे हटाओ;
मुझे ज़रा उस पार लगा दो,
तब विराम तुम लेना;
नैया धीरे-धीरे खेना।

श्री मैनावती जैन

"वीत गये दिन उजड़ चुकी है बस्ती मेरी"—यह श्री मैनावतीके हृदयके स्वर हैं—अकृत्रिम और यथार्थ। अपने विषयमें वह लिखती हैं :—

"मुझे कवियित्री वनने या कहलानेका अभिमान नहीं, दावा नहीं; और इच्छा भी नहीं; परन्तु अपने इन असहाय पीड़ा-भरे शब्दोंको आँसूकी लड़ियोंमें गूँथनेका कुछ रोग-सा हो गया है। यह मेरा रोग भी है और मेरे रोगकी सर्वोत्तम औषधि भी।"

उनके जीवनमें दुःख वज्रकी तरह अचानक आ टूटा। १८ फ़रवरी सन् १९४२को इलाहाबादके पास खागा स्टेशनपर जो रेल-दुर्घटना हुई थी, उसमें इनके पति श्री विमलप्रसाद जैन, बी० कॉम०, देहली, स्वर्गवासी हो गये थे। उस समय इनके विवाहको ठीक एक वर्ष हुआ था। उसी दिनसे यह मनके गहरे विषादको आँसुओंकी धारामें बहानेका प्रयास कर रही हैं। इनकी कवितामें शब्दोंकी सुकुमारता और शैलीका सुन्दर समावेश भले ही न हो, किन्तु हृदयकी व्यथा अवश्य है।

श्री मैनावतीका जन्म सन् १९२५ में इलाहाबादमें स्वर्गीय ला० शम्भूदयाल जैनके घरमें हुआ। 'विमल पुष्पाञ्जलि' नामसे आपकी धार्मिक कविताओंका एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

चरणों में !

अब छोड़के जाऊँ कहाँ
चरणारविन्द तेरे ;
आई हूँ द्वारपर मैं,
कुछ पास है न मेरे।

सब भक्त तो चढ़ाते,
जल-गन्ध-पुष्प-अक्षत ;
नैवेद्य दीप पावन,
फल धूप कर्म-दाहन।

मैं शीश हूँ नवाती,
उर भक्ति-भाव मेरे ;
अब छोड़के जाऊँ कहाँ,
चरणारविन्द तेरे।

जन लौटते नहीं हैं,
निष्फल निराश होकर ;
'मैना' पड़ी चरणमें,
आँसूकी माल लेकर।

साथी सगा न कोई,
प्रियतम 'विमल' सिधारे ;
अब छोड़के जाऊँ कहाँ,
चरणारविन्द तेरे।

श्री सौ० सरोजिनीदेवी जैन

सौ० सरोजिनीदेवीजी 'वीर' के प्रसिद्ध सम्पादक श्री कामताप्रसादजी की सुपुत्री हैं। आपका जन्म ता० १ जून १९२९ को अलीगंज (एटा)में हुआ था। सन् १९४३ में आपने 'लोअर मिडिल'की परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास की थी; जिसमें द्वितीय भाषा--उर्दूमें आपको 'डिस्टिंक्शन' मिला था। इस ओरकी जैन समाजमें आप पहली सुलेखिका और कवियित्री हैं। सन् १९४३में आपका विवाह दि० जैन परिषद् क़ायमगंजके उत्साही अग्रगो-युवक श्री सुमतिचन्द्रजीके साथ हुआ था। श्री सरोजिनीदेवीने भा० दि० जैन परिषद् परीक्षा बोर्डकी कई धार्मिक परीक्षाओंमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्णता पाई है और पुरस्कार भी पाया है।

"जैन महिलादर्श"में आप बराबर सुन्दर लेख और मोहक कविताएँ लिखती रहती हैं। आपकी कवितामें स्वाभाविक गति है और आपकी दृष्टिमें मौलिकता है। प्रसिद्ध कवियित्री श्री मणिप्रभादेवीने लिखा है कि "सरोजिनीने कविता सुन्दर शब्दावलिमें गूँथी है--भावकी दृष्टिसे भी (उनकी कविता) काफ़ी अच्छी है। (इन्होंने) डाली तथा कुसुमका बड़ा सुन्दर और शुद्ध साहित्यिक संवाद लिखा है। इनकी अब तककी रचनाओंमें यह सबसे श्रेष्ठ रचना है। सरोजिनी इसी तरह उत्तरोत्तर उन्नति करती रहें। (वह) धीरे-धीरे खूब विकसित होती जाती हैं।"

--जैनमहिलादर्श

गीत

मैं दुखसागरकी एक लहर !

जो प्रति क्षण तट चुम्बन करने, आती हैं आलिंगन भरने,
पर तट ठुकराता पग-पगपर, पड़ते हैं अगणित दुख सहने,
अनुभव उसका मुझको कटुतर !

निज तन देकर जो जग सिंचन, करतीं हैं बनकर आनन्द धन,
इसपर भी तो स्नेह नहीं मिलता, लगता नीरस जीवन ;
उससे परिचित मेरा अन्तर।

तुम क्या जानो दुखकी रेखा, तुमने सुख रत्नाकर देखा !
आहत अन्तर ही समझ सकेगा, ठुकराये अन्तरका लेखा !
तुम तक तो सीमित सुखसागर।

मैं अपनेको करती अर्पण, तव सुख-चिन्तन करती प्रति क्षण,
तुम इतराते, कुछ प्यार नहीं; होता सुवर्णमय-तन रज-कण ;
पीड़ा लहरी हो रही अमर।

यह लहर-लहरकी दुख कम्पन, कब मन्द पड़ेगी दिल धड़कन,
होगा समाप्त तट निष्ठुरपन, कब लहर-लहरका मंजुमिलन।
लहरोंका सुख तटपर निर्भर।

श्री सौ० पुष्पलता देवी कौशल, सिवनी, सी० पी०

आप समाजके प्रसिद्ध कार्यकर्ता, जैनधर्म विशारद बाबू सुमेरचन्द्रजी 'कौशल' बी० ए०, एल-एल० बी० प्लीडर सिवनीकी धर्मपत्नी हैं। आपका विवाह हुए १० वर्ष बीते हैं। आपकी बाल्यावस्थामें ही आपके पिता सवाई सिगई श्री खूबचन्दजी जबलपुरका स्वर्गवास हो चुका था। आपकी माता श्रीमती सुन्दरबाईने अपने अन्य दो पुत्रों सहित आपका सुलालन पालन वैधव्य अवस्थाका आदर्श पालन करते हुए किया है। माता-पिताके धार्मिक संस्कारोंका आपपर पूर्ण प्रभाव पड़ा है। इसलिए आपकी धार्मिक शिक्षण और सदाचरणकी ओर विशेष रुचि है। आप बंगाल संस्कृत एसोसिएशनकी 'न्यायतीर्थकी' तैयारी कर रही हैं। तथा बम्बई परीक्षालयकी 'विशारद' पास कर चुकी हैं।

आपको साहित्यसे विशेष अभिरुचि है। और कभी-कभी कविता और लेख लिखा करती हैं। आपकी कविता तथा लेख "जैन महिलादर्श"में ससम्मान प्रकाशित होते हैं। "दर्श"के कविता मन्दिरमें आपको अपने लेखों और कविताओंपर प्रथम पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

भारत नारी

जाग जाग हे भारत नारी !

प्राचीमें अरुणोदय छाया,
अन्धकारका हुआ सफाया,
तेरा समय आज है आया,

जाग जाग हे भारत नारी !

सदियोंसे तू पिछड़ रही है,
तव जीवनका मूल्य नहीं है,
अन्धकारमें पड़ी हुई है,

जाग जाग हे भारत नारी !

तू जीवनको सुखी बनाये,
चाहे जीवन दुखी बनाये,
तुझपर है सब जिम्मेदारी,

जाग जाग हे भारत नारी !

तू है शक्ति, तू ही जगदम्बा,
तू है विजया, तू है रम्भा,
उठ आगे आ, छोड़ दासता,

जाग जाग हे भारत नारी !

गीति-हिलोर

श्री गेंदालाल सिंघई, 'पुष्प' साहित्यभूषण

श्री गेंदालाल सिंघई, चन्देरी (ग्वालियर)के रहनेवाले हैं और श्री चम्पालाल 'पुरन्दर'के अनुज हैं। आपने १३ वर्षकी अवस्थासे ही कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपकी भावपूर्ण रचनाएँ पहले जैन-पत्रोंमें प्रकाशित होती रहीं, फिर आपने 'नवयुग'के लिए विशेष रूपसे कविताएँ लिखीं। अब प्रकाशित नहीं कराते। इनका एक कविता-संग्रह और एक काव्य प्रकाशनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

आपकी कविताके भाव सुबोध होते हैं, क्योंकि भाषा आडम्बरहीन होती है; और प्रेम-मूलक कविताएँ प्रायः सभी सुन्दर हैं।

कभी कभी मैं गा लेता हूं

कष्ट कहींसे आ जाता है,
दिल दुखसे घबरा जाता है,
अन्तस्तलकी पीड़ाको मैं
गाकर ही सहला लेता हूँ।

इस विस्तृत जगतीके पटपर
चित्र खिंच रहे नित नूतनतर,
नया न कुछ कहकर दृश्योंको
शब्दोंमें दुहरा देता हूँ।

कभी-कभी आशा जा-जाकर
लौटी साथ निराशा लेकर,
बुरा नहीं इसको कहता हूँ,
दोनोंको अपना लेता हूँ।

कभी-कभी मैं गा लेता हूँ।

बलिदान

जीवनका बलिदान मुझे दो,
सुखमय जीवन-दान न दो।

आज न मन बहलानेको हम मृदु वीणा झंकार करें;
इस जीवनका मूल्य मिलेगा, आज मृत्युसे प्यार करें।
भूल रहा मानवको मानव, पशुताका संहार करें;
शोषण, उत्पीड़नके बदले प्रलयंकर हुंकार करें।
'जीवनका उत्सर्ग करें' यह
प्रण दो मुझको प्राण न दो।

भक्तोंमें हो शक्ति, स्वयं भगवान दौड़कर आते हैं;
भक्त सगुणको निर्गुण औ' निर्गुणको सगुण बनाते हैं।
यदि भगवान नृशंस क्रूरता घातकता अपनाते हैं;
तो विद्रोही भक्त आज उनका अस्तित्व मिटाते हैं।
भक्तोंने भगवान बनाये,
भक्त मिले, भगवान न दो।

भरा विश्वका भाग्य हमारे मस्तककी इस रोलीमें;
दीवाने बनकर मिल जायें दीवानोंकी टोलीमें।
भीषण नर-संहार मचेगा करुण-कंठकी बोलीमें;
क्षण-भरमें यह जगत जलेगा महानाशकी होलीमें।
सुखसे मुझको मर जाने दो,
जीनेका अरमान न दो।

जीवन संगीत

जगतका जीवन हीं संगीत।
उन्नति इसकी आरोही है,
अवनति इसकी अवरोही है,
कष्ट यातना क्लेश क्लान्ति ही हैं करुणाके गीत।
जगतका जीवन ही संगीत।

रहता दुखका स्वर वादी है,
आशाका स्वर संवादी है,
कष्ट कसक ही मीड़ मसक है दो हृदयोंकी प्रीत।
जगतका जीवन ही संगीत।

खाली कभी भरी हो जाती,
भरी कभी खाली बन जाती,
कोमल तीव्र, तीव्र कोमल हो, यही प्रेमकी रीत।
जगतका जीवन ही संगीत।

श्री फूलचन्द्र 'मधुर', सागर

श्री फूलचन्द्र 'मधुर' दि० जैन महिलाश्रम सागरके मन्त्री श्री चौधरी रामचरणलालजीके सुपुत्र हैं। आपको अल्पावस्थासे ही कवितासे रुचि है। यद्यपि आपकी शिक्षा मिडिल तक ही हुई है और अवस्था भी बाईस वर्षके लगभग है फिर भी आप बड़ी सरस कविता करते हैं। इनके गीति-काव्योंमें हृदयकी स्वाभाविक संवेदना होती है और प्रायः कविताका धरातल अपार्थिव और उन्नत होता है।

आप राष्ट्र-कर्मी होनेके कारण जेल-यात्रा भी कर आये हैं। इसलिए इनके गीतोंमें युगकी आवाज़ गूँजती है। आपने 'मानवगीत' नामक एक कविता-पुस्तक लिखी है, जो प्रकाशनकी प्रतीक्षामें है।

टूटे हुए तारेकी कहानी : तारेकी ज़ुबानी

था क्या आधार ?

गगनने मुझको गिराया
भूमिने मुझको उठाया
मध्यमें मुझको बसाने कौन था तैयार ?

था चमकता गात मेरा
था निशापर राज मेरा
और अगणित मानवोंका था मुझे ही प्यार।

देख मुझको व्यथित मनसे
हँस रहे तारे गगनसे ;
वन्धु मुझपर हँस रहे हैं देखकर लाचार।

देखकर मेरा पतन यह
हृदयका मेरे रुदन यह
(कह दिया ग्रालोचकोंने)
जो कहाते विश्व-विजयी, ग्राज उनकी हार।

था क्या ग्राधार ?

गीत

छुप रहा जीवन तिमिरमें।
सजनि, ये क्षण-क्षण सिमटकर मिल रहे धूमिल प्रहरमें। छुप रहा०

छुप रही लाली क्षितिजमें, छुप रहा दिनकर गगनसे ,
ग्रौर छुपने जा रहे उन्मुक्त खगगण भग्न मनसे ,
जो रहा ग्रव तक यहाँ, सव वह गया इक ही लहरमें। छुप रहा०

जव हृदयको गीत भाया, भाव सव जिसपर लुटाया ,
ग्रौर ग्रव तक ज़िन्दगीमें जो, सखे, था प्यार पाया ,
शोक वह कुछ भी नहीं, सव रह गया पिछले प्रहरमें। छुप रहा०

वेदनाके गीत गाता, विगतकी स्मृतिको सुनाता,
बढ़ रहा हूँ शून्यमें मैं, शून्यमें खुदको मिलाता,
प्रिय अप्रिय क्या-क्या रहा, यह सोचता पथमें ठहर मैं। छुप रहा०

वेदनाके साथ मिलकर, यातनाके साथ घुलकर,
प्राप्त जो कुछ कर सका मैं, दो क्षणोंका प्यार बनकर,
सब लुटाता जा रहा हूँ, आज इस सूनी डगरमें।
छुप रहा जीवन तिमिरमें।

मैंने वैभव त्याग दिया है

जिसको है जगने ठुकराया, उसको ही मैंने दुलराया;
जिसको जगकी घृणा, उसीको अब तक मैंने प्यार किया है।

तव जीवन पहचान न पाया, किंचित् सुखमें पथ बिसराया;
वैभवहीन आज हो मैंने जगका कुछ उपकार किया है।

मानव अपना पथ बिसराये, कुछ भूले-से कुछ भरमाये;
मैंने जबसे जगमें पाये दुखका ही सम्मान किया है।

हुए स्वप्न वे दिवस हमारे, त्याग सभी सुख साज पियारे;
आज विश्वके निकट खुशीसे प्रस्तुत यह आदर्श किया है।
मैंने वैभव त्याग दिया है।

आज विवश है मेरा मन भी

पग-पगपर मेरे प्रतिबन्धन
है अन्तरमें भीषण क्रन्दन
अरे वँधी सीमाएँ उसकी अल्प जिसे विस्तीर्ण गगन भी। आज विवश है०

आह पतन यह कितना अपना,
इससे भी कुछ ज्यादा सहना,
किन्तु दुखी अन्तःका कोई नहीं आज सुनता रोदन भी। आज विवश है०

वे विजयी कहलानेवाले,
हम हैं अश्रु वहानेवाले,
आज परस्पर ऊँच-नीचका है क्यों जगमें सन्धिक्षण भी ? आज विवश है०

हम भी अब युगको अपनावें,
मिटनेके अरमान जगावें,
खोये अधिकारोंको पावें,
अपना पथदर्शक कहता है, "अमर रहा कव मानव-तन भी" ?
आज विवश है मेरा मन भी।

श्री 'रतन' जैन

कविताके क्षेत्रमें उन्नतिकी ओर शीघ्रतासे क़दम बढ़ानेवाले नवयुवकोंमें श्री रतनकुमार जैनका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। यद्यपि आपका उपनाम 'रतन' या 'रत्न' नहीं है, फिर भी आप अपनी कविताओंके साथ यही नाम छपवाते हैं।

श्री 'रतन' जैन, जयसिंहनगर (सागर)के रहनेवाले हैं; और इस समय स्याद्वाद महाविद्यालय काशीमें अध्ययन कर रहे हैं।

यद्यपि आपके गीतोंमें वेदना और निराशाकी स्पष्ट छाप है किन्तु जीवनके निरीक्षणका दृष्टिकोण एकान्तवादी नहीं है। हमें आशा करनी चाहिए कि वह अपनी 'परिचय' शीर्षक कविताके अनुसार ही अपने कवि-जीवनका ध्येय बनायेंगे :—

'मैं कवि हूँ कविता करता हूँ, मुरदोंमें जीवन भरता हूँ।'

मुझसे कहती मेरी छाया

सोच सम्हल पग धरना मगमें,
काँटे फूल बिछे डग-डगमें,
जीवनके उत्थान-पतनमें उलझ न जाय कहीं यह काया,
मुझसे कहती मेरी छाया।

प्रिय वसन्तके नवल रागमें,
यौवन सरसिजके परागमें,
भूल न जाना पथिक कहीं तू अंगारोंकी जलती छाया,
मुझसे कहती मेरी छाया।

प्रणय-कम्पकी भीनी सिहरन,
मृगनयनीकी तीखी चितवन,
प्यार-भरी इन रातोंमें है सदा किलकती छलनी माया,
मुझसे कहती मेरी छाया।

मेरे अन्तरतमके पटपर

इन्द्रधनुषकी नवल तूलिका
सुख-दुखकी ले मृदुल भूमिका
विस्मृत जीवनके चित्रोंको करती रेखांकित है सत्वर,
मेरे अन्तरतमके पटपर।

शैशवकी वालारुण आभा
यौवनकी मदमाती छाया
रतनारे इन नयनोंसे है अश्रुविन्दु छलकाती मृदुतर,
मेरे अन्तरतमके पटपर।

पुण्य-पापकी गा गाथाएँ
प्यार-भरी नूतन आशाएँ
नीरव निर्जन वन्य प्रान्तमें इठलाती हैं सरिता-तटपर,
मेरे अन्तरतमके पटपर।

पूछ रहे क्या मेरा परिचय ?

मैं कवि हूँ कविता करता हूँ,
मुरदोंमें जीवन भरता हूँ,
जीवन-दीप जलाकर अपना प्राणोंका करता हूँ विनिमय।
पूछ रहे क्या मेरा परिचय ?

जगमें फहरे यश:पताका,
जल, थल, नभमें घहरे साका,
किन्तु सदा ही भूखा सोता, पेट बाँधकर अपना निर्दय।
पूछ रहे क्या मेरा परिचय?

गा-गा मेरे गीत मनोहर,
मुग्ध हुआ जग विस्मृत होकर,
किन्तु यहाँ तो जीवन-भर ही, रोने-ही-रोनेका निश्चय।
पूछ रहे क्या मेरा परिचय?

बतलाओ तो हम भी जानें

क्यों मुसकान-भरी हैं रातें,
सजा-सजा दीपोंकी पाँतें,
बिखरा देती भूतलपर नित, मुक्तमालके दाने-दाने।
बतलाओ तो हम भी जानें?

ऊषाकी काली अलकोंमें,
संध्याकी नीली पलकोंमें,
नवल राग चमकाकर, आली, गाती मनहर कौन तराने।
बतलाओ तो हम भी जानें?

कृष्ण निशामें क्यों दीवाली,
क्यों वर्षामें बदली काली,
क्यों वसन्त पतझड़के पीछे, पंचमके क्यों मीठे गाने।
बतलाओ तो हम भी जानें?

श्री फूलचन्द्र, 'पुष्पेन्दु'

'पुष्पेन्दु'जी लखनऊके निवासी हैं। आप छै भाई हैं, जो सबके सब न्यूनाधिक-रूपमें साहित्यिक और कला-प्रेमी हैं। 'पुष्पेन्दु'जीमें स्वाभाविक प्रतिभा है। इनकी कविता मौलिक और अकृत्रिम होती है। वह अपने हृदयके भावोंको व्यक्त कर सकनेवाले शब्दों और उनके अनुरूप शैलीको सहज भावसे प्राप्त कर लेते हैं। उनकी सभी रचनाएँ परिस्थितियोंसे आलोकित हृदय-सागरके मन्थनका परिणाम हैं। उनके गीतोंमें ताज़गी और आँसुओंका सजल क्षार है।

जब वह ग्यारह वर्षके ही थे, तभी उन्होंने लखनऊके 'सफ़ेदा आम'पर मौलिक रचना गढ़ ली थी जो पाठकोंके मनोरंजनके लिए नीचे दी जाती है:—

लखनौआ सफैदा और लंगड़ा बनारसका
दोनों ही ये आममें शिरोमणि कहायो है,
लखनऊके सहसाह दूधसे सिचायो जाय
ताहि केरि वंसज सफैदा नाम पायो है;
याहीसे लड़नेको बनारससे धायो एक
बीच ही में टाँग टूटी लँगड़ा कहायो है;
कहैं 'पुष्पइन्दु' वाने यत्न बहुतेरे कीन्हें
तबहूँ सफैदाकी नजाकत न पायो है।

स्मृति-अश्रु

विगतमें जो सो रही थी
काल-क्रमका डाल आँचल,
दूर होता जा रहा था
दृष्टिसे जो दृष्टि प्रति पल;

मैं जिसे इतने दिनोंपर
आह, था अब भूल पाया,
आज धुँधली पड़ चली थी
जिस विगतकी क्षीण छाया।

आज कोकिल कूककर फिर
कह गई बीती कहानी,
जागरित फिर हो पड़ी
संस्कारकी सत्ता पुरानी।

शान्त उरमें फिर लगा
उठने वही भीषण ववण्डर,
अश्रु-कण तुम भी चले
आये पुरानी याद लेकर।

अभिलाषा

मैं बना रहूँ, जग बना रहे।

तारक-मणि-मंडित नील गगन,
लख, तारोंका झिलमिल नर्तन,
मन ही से कह उठता है मन,
'मेरे ऊपर यह रत्न-जड़ित सुन्दर वितान-सा तना रहे'।
मैं बना रहूँ, जग बना रहे।

यह चन्द्र मधुर मुस्कान लिये,
उन्नति क्रमका अभिमान लिये,
किरणोंका कोष महान लिये,
अमृतमय सुधा बतानेको यह सदा सुधासे सना रहे।
मैं बना रहूँ, जग बना रहे।

यह सांध्य गगन सौन्दर्य प्रखर,
यह अचल हिमाचल शैल शिखर,
यह सरिताओंकी लोल लहर,
इनका रहस्य कुछ जान सकूँ, बस एक यही साधना रहे।
मैं बना रहूँ, जग बना रहे।

यह मित्र भला उस पार कहाँ,
यह मात-पिता-परिवार कहाँ,
यह चिर-परिचित संसार कहाँ,
केवल सबको सब पहचानें, बस प्रेम परस्पर घना रहे।
मैं बना रहूँ, जग बना रहे।

देव-द्वारपर

आज आया हूँ यहाँपर विश्वका विश्वास लेकर,
आज आया हूँ यहाँपर विश्व-भरकी आश लेकर,
पाद-पद्मोंमें तुम्हारे सर झुकाता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ।

आपको अपना समझकर वेदनाके द्वार खोले,
सब निवेदन कर चुका मैं, किन्तु तुम कुछ भी न बोले,
इस तुम्हारी मौनतापर मुस्कराता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ।

एक निर्धन भी, अरे! करता अतिथि-सत्कार कैसा,
विश्वपति यह फिर तुम्हारा है भला व्यवहार कैसा?
आज इस आश्चर्यमें दुख भी भुलाता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ।

भूलता-सा जा रहा हूँ वेदनाका भार भगवन् ,
भूलता-सा जा रहा हूँ, नाथ, मैं अपना निवेदन ,
हृदयके आवेशमें मैं कुछ सुनाता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ।

व्यथा

जागे आज व्यथाके भाग !
जो कविसे उत्पन्न हुआ है अब उसको अनुराग ,
जागे आज व्यथाके भाग।

हृदयहीनसे प्रीति लगाकर उसने था अब तक क्या पाया ,
ज्यों-ज्यों उसे पकड़ने दौड़ी, त्यों-त्यों वह उससे घबराया ,
अब आनन्द अधिक आयेगा मिली आगसे आग ,
जागे आज व्यथाके भाग।

मेरे व्याकुल सप्त स्वरोंपर शब्दराशि बनकर वह आई ,
उष्ण उसाँसोंसे भी मैंने शीतल मन्दाकिनी बहाई ,
कलकल छलछल ध्वनिने गाया अपना व्यथित विहाग ,
जागे आज व्यथाके भाग।

कितने मानव मुझे प्राप्तकर इस जगमें बेमौत मरे ,
केवल कवि है जो मरकर भी तुझको जगमें अमर करे ,
कविने आँखोंमें पाला है, तेरा अचल सुहाग ,
जागे आज व्यथाके भाग।

श्री गुलजारीलाल, 'कपिल'

आप आगरा कॉलेजमें एम० ए०के विद्यार्थी हैं। पिछले पाँच वर्षसे कविता, कहानी, लेख लिख रहे हैं। कविताओंके परिचय-स्वरूप वह लिखते हैं :—

"जीवनके प्रति मेरा दृष्टिकोण सदैव वेदनामय रहा है। यद्यपि कुछ रूढ़वादी विचारक तथा समालोचक इस दृष्टिकोणको विदेशी तथा आधुनिक कवियों एवं नवयुवकोंका फ़ैशन बताते हैं, किन्तु मैं जीवनके प्रति इस दृष्टिकोण ही को वास्तविक रूपमें शाश्वत मानता हूँ। क्योंकि मैं समझता हूँ, सुखके क्षण हमारे जीवनमें बहुत थोड़े आते हैं और उनका कार्य भी हमारी कामनाओंको विकृत करना ही होता है। किन्तु दुख अथवा वेदना हमारे जीवनके चिर-संगी हैं और वे ही ज्ञात अथवा अज्ञात-रूपसे हमारी जीवन-धारामें निरन्तर विद्यमान रहते हैं। अतः मैं उन्हींको अत्यन्त मूल्यवान् समझकर सदैव अपनाता रहा हूँ।"

विश्वका अवसाद हूँ मैं

विश्वने कब मुझे चाहा,
कब मुझे उसने सराहा,
सह चुका हूँ दुःख अति, क्या और भी सहता रहूँ मैं ? विश्वका···

जन्मसे ही हूँ अभागा,
भावनाके साथ जागा,
इसलिए रोया बहुत, क्या और भी रोता रहूँ मैं ? विश्वका···

झुलस अन्तर गया मेरा,
शून्यताने मुझे घेरा,
तड़पता औ' भटकता जैसे रहा वह ही रहूँ मैं ? विश्वका···

शान्तिसे मैं रह न पाया,
जन्म कब सुखसे बिताया,
सह चुका जो सह चुका, अब किसलिए, क्यों, क्या कहूँ मैं ?
विश्वका अवसाद हूँ मैं।

रुदन या गान

प्रिय, यह रुदन या गान ?
प्रकृतिका यह क्रम निरन्तर
चल रहा अनजान !

विश्वमें नव-चेतना औ'
क्रान्तिकी उत्पत्ति करता,
हर्षसे उन्मुख हुआ
रवि बढ़ रहा श्रुतिवान।

किन्तु यह संध्या सुहासिनि
आज क्यों बनकर उदासिनि
ध्वान्तसे निज रिक्त-उर
है भर रहीं अज्ञान !

सङ्ग ले निशि-प्रेयसीको
उडुगणोंके हारसे पो
शशि भ्रमण करता हुआ
क्या गा रहा सप्रान ?

हाय, यह क्या, क्यों बिचारी
विरह - वश ऊषा दुखारी,
अरुण - नयनोंसे बहाती
ओस - अश्रु अजान !

श्री हीरालाल जैन, 'हीरक'

आप स्याद्वाद-महाविद्यालय काशीके विद्यार्थी हैं। छायावादी ढंगके गीत लिखनेका प्रयास करनेपर इनके भाव जरा दुरूह अवश्य हो जाते हैं, मगर फिर भी कविताकी ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति और हृदयमें भावुकता होनेके कारण भविष्यमें आप अच्छी रचनाएँ करेंगे, ऐसी आशा है।

प्राण, क्यों म्रियमाण ऐसे ?

साधनासे शून्य पथमें भ्रान्त और उदास कैसे ?

विगत जीवनमें दिया है पूर्ण आलम्बन सहारा ;
सुप्त जागे सुन विपंची गानका स्वर स्वान्त प्यारा।
क्यों हुए निस्तेज पथमें म्लान और निराश ऐसे ?

वीर गाथाएँ अभी भी व्यक्त-स्वरमें गा रही हैं ;
पूर्वका इतिहास सम्मुख कह हृदय अकुला रही हैं।
कह रही, क्यों आज जीवनमें कलङ्क प्रयास ऐसे ?

विश्वका निर्माण तेरे अजय पौरुषपर हुआ है ;
नरकमें भी शान्ति-रसका पान मदिरा-सा हुआ है।
क्यों वने दौर्बल्यमय फिर मोहके आभास ऐसे ?

जग उठो, जग, नील नभपर सुकृतिसे वन शुभ्र तारे ;
चमचमाओ जगमगाओ नष्ट कर तम-तोम सारे।
गई वेला, हाथमें आना कठिन, निःश्वास कैसे ?

देखा है

अवनि और अम्बरके ऊपर नर-संहार मचा देखा है !

अपनी-अपनी आशाओंपर, जीवनकी अभिलाषाओंपर,
इस भंगुर वैभवके ऊपर, मायावी दुनियाके ऊपर,
एक समयमें असमय मैंने वज्रपात होते देखा है !

देकर प्राण प्राणको लेनें, सजन महीतल निर्जन करने,
अपनेपनका वर्जन करने, पर-वसुधाका अर्जन करने,
राजाओंका नंगापन भी वर्तमान युगमें देखा है !

जिसे चाहते हम लेनेको, उसे न चाहें हम देनेको,
बीच-बीचमें फूट डालकर बड़ी-बड़ी 'स्पीच' झाड़कर,
करते हैं अन्याय हमीं खुद, विषम न्याय ऐसा देखा है !

हमें लूट फिर भी कहते हैं, 'आह' न मुखसे अरे निकालो !
विषम यातना सहा न चाहो, विष खा लो, जीवन दे डालो,
इसी तरहका वसुधातलपर, शासन, हा, मैंने देखा है !

धन अपहरण हमारा करते, न्याय-नीति अवलम्ब न करते,
विश्व हितैषी-पनमें फिर भी लेश वित्त व्यय भी ना करते,
सदा चाहते कोष अमर हो, ऐसा राजापन देखा है !

प्रजा मरे, चाहे कुछ भी हो, कभी स्वार्थमें नहीं कमी हो,
शासन सत्ता रहे हमारी, नहीं देशमें शान्ति रही हो,
ऐसी कुत्सित अभिलाषाओंपर शासन-जीवन देखा है !

राजा-प्रजा जहाँ दोनोंका नहीं प्रेमसे वास रहा है,
राजाओंका नहीं परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा है,
वहाँ शान्ति भी कभी न होगी, नियम अचल मैंने देखा है !

सीकर

१५

श्री ईश्वरचन्द्र, बी० ए०, एल-एल० बी०

अर्चना

ओ, वीतराग पुनीत,
देव तुमसे ही अलंकृत मुक्तिका संगीत।
अमानिशिके गहन तमको
भेद ज्योतिर्मान !
रश्मि रूपसियाँ सरस, कोमल,
चपल गतिमान !
लोल लहरोंपर लिखे निर्वाणके मृदु गीत।
ओ, वीतराग पुनीत !

प्रेम-सागरके अतल तल
के मृदुल उपहार,
पूर्ण राग विरागके
ओ, भव्य जयजयकार !
आत्म-परिरम्भक, तुम्हींसे बन्धनोंकी जीत।
ओ, वीतराग पुनीत !

दिव्य-ध्वनि, ओ, दिव्य-द्रष्टा,
अमित सुख सन्देश !
दीप्त दीपक ज्ञानके
जाज्वल्यमान अशेष !
भव्य मानवके भविष्यत, वर्तमान, अतीत,
ओ, वीतराग पुनीत !

श्री अनूपचन्द्र, जयपुर

मेरा उर आलोकित कर दो

विन्दु-विन्दु कर रिक्त हुआ घट,
चिर जीवन मदिरासे भर दो।
संसृतिका कोमल कठोर तल
आज स्वर्ण-आभासे उज्ज्वल।
मेरे उरके अन्धकारको
अपना सुषमारुण सत्वर दो। मेरा उर...

पलकोंके पथपर चल पुलकित,
स्वयं अमलता हुई अवतरित।
मम उरके पंकिल शत दलको
विमल हास, औ अरुण अधर दो। मेरा उर...

नीलमके चँदवेके नीचे
शत शत रविके स्वर्ण गलीचे
बिछा, अकिंचनता-चुप्पीमें
वैभवका चंचल स्वर भर दो। मेरा उर...

मिलन प्रतीक्षामें सजधजकर
वसुधा श्वासोंमें सौरभ भर,
(पलक-प्रदीप बिछाती पथमें)
देवि, प्रतीक्षाकी प्यासीको
मत पावसका चिर निर्झर दो।
दो जीवनका स्पन्दन स्वर दो,
मेरा उर आलोकित कर दो।

श्री साहित्यरत्न पं० चाँदमल, 'शशि', जयपुर

'प्रण, दे प्राण निभायेंगे'

वार-बार उठ कहती हमको अन्तरतमकी मूक पुकार,
'अब हम तुझसे उऋण बनेंगे, दे निज जीवनका उपहार,

आई यह वेला वर्षोंमें अपनी साध पुरायेंगे;
तेरे हम आदर्श बाल, माँ, प्रण, दे प्राण निभायेंगे।

भ्रमवश अपने समझ न तेरा आज भले कर लें अपमान;
पर वह दिन दूर न जब होगा तुझको प्राप्त जगत्-सम्मान।

भूले-भटके सभी एकमत हो पथपर आ जायेंगे;
गायेंगे जय-गीत तुम्हारे, प्रण, दे प्राण निभायेंगे।

तेरा और हमारा नाता, जन्म-जन्मसे बना हुआ;
इस नश्वर तनकी नस-नसमें तेरा ही स्वर भरा हुआ।

पृथक् न हो सकते तुझसे, सुत तेरे ही कहलायेंगे;
तेरी रक्षा-हित सब, मातः, प्रण, दे प्राण निभायेंगे।

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, 'सरोज'

निशा भर दीपक जिये जा

कामना यह आज जगकी, 'सुखद दीपक सुख दिये जा'—
जगत् जल-जलकर प्रकाशित; सुखद जीवनमें जिये जा। १
भूल जा तू जलनमें दुख, साधना-हितमें अमर सुख—
भावना ले महा अनुपम; तेजमय अग-जग किये जा। २
अमर जलना काम तेरा, हो न चाहे नाम तेरा—
मौन रह-रह जग सजग कह; अमर सुख जगको दिये जा। ३
ग्रन्थि दीपक स्नेह बाँधी, भूल वर्षा-मेह-आँधी—
विश्वका तू साथ जल-जल; निशा-जीवन भर दिये जा। ४
अभी दीपक स्नेह-बाती, भूल जा तू मृत्यु आती—
जलाता जो विश्व तुझको; खूब आलोकित किये जा। ५
स्नेह सुखप्रद दीप बाकी, बनो जगके दीप' साकी—
गहन जीवनकी निशामें; सुमधु-प्याला भर दिये जा। ६
नहीं जब तक शुभ सवेरा, यहीं बस तू जमा डेरा—
चाहता वरदान जग है, 'सुखद दीपक सुख दिये जा'। ७
तुम चमकते बनो मोती, दीन-दुनिया नित्य रोती—
तथा रो-रो धैर्य खोती; कुछ दिलासा तो दिये जा। ८
जहाँ छाया तिमिर भारी, बसी दुखकी अमाँ न्यारी—
मौन मानवके हृदयको भी प्रकाशित तू किये जा। ९
जगत् सो जा अभी सुखसे, शुभ सवेरा कामना ले—
दीप जल संन्देश तू यह; निशा भर जगको दिये जा। १०
जायगा जब हो सवेरा, तभी होगा अन्त मेरा—
'फिर मिलेंगे' कह उषामें; विदा जगसे तू लिये जा। ११

श्री सागरमल, 'भोला'

जग-दर्शन

वेदनाकी हलचलोंमें एक अद्भुत सार देखा।

चेतना कब तक रही है
और भी कब तक रहेगी,
ज़िन्दगी अवसाद होकर
दुख अभी कितना सहेगी?

आज क्षण-क्षण पल-पलकमें एक हाहाकार देखा।

आज सदियोंकी पुरानी
अनल-लय मैंने सुनी है,
आहकी निःसीम साँसें
एक उँगलीपर गिनी हैं;

प्रति हृदयके बीच मैंने एक चुभता तार देखा।

शान्ति तो मुर्दा जगत्की
भ्रान्तिकी बेबस पिपासा,
थी कभी मेरे हृदयमें
स्वप्नकी यह क्षणिक आशा;

अब सुकोमल फूलको काँटों-भरा लाचार देखा।

जिस हृदयमें था अँधेरा
हो न पाता था सवेरा,
कायरोंका एक घेरा
पापका दुर्दिन बसेरा;

अब उसीमें क्रान्तिका फूला-फला संसार देखा।

श्री बाबूलाल, सागर

पथिकके प्रति

निराले किस पथपर अनजान,
अनोखे ले करके अरमान,
चला क्या जीवन-पथकी ओर,
लिये नव व्यंगमयी मुसकान।

सुना है उर-अन्तरके राग,
मगर तू रहना सदा विराग,
उठाते मादक भरी हिलोर,
सहनकर मोहक तीखे बान!

मचा है युग-व्यापी संहार,
उलटते नभ-चुम्बी प्रासाद,
छूटती चिनगारी विकराल,
विमुख मत होना, ओ अनजान!

पथिक मत होना कभी हताश,
देखकर ज़ुल्मोंकी बौछार,
जगाना पावन-ज्योति नितान्त,
ध्येयपर हो करके क़ुर्बान।

कुचलना कंटक कुलिश कुठार,
धारना मणिमय मुक्ता-हार,
सरल कर जटिल समस्या-जाल,
गुँजाना गुण-गण गरिमा-गान।

क्रान्ति धर गूँजा तीव्र हुँकार,
पतनमें ला दे शान्ति अपार,
अवनिपर बिखरे कीर्ति-पराग,
रचा दे नूतन सृष्टि-विधान।

श्री कपूरचन्द नरपत्येला, 'कंज'

मेरी बान !

मेरी सदा रहे यह बान।
धर्म-जाति हित मरना सीखूँ,
पर-सेवा हित जीना सीखूँ,
रखूँ देशकी शान,
मेरी सदा रहे यह बान।१

बिछड़ोंको मैं गले लगाऊँ,
पिछड़ोंको मैं आगे लाऊँ,
दिलमें आनँद मान,
मेरी सदा रहे यह बान।२

भूखोंको मैं तृप्त कराऊँ,
प्यासोंकी मैं प्यास बुझाऊँ,
करूँ दयाका दान,
मेरी सदा रहे यह बान।३

दुखियोंका दुख हरना सीखूँ,
दीनोंको धन देना सीखूँ,
रखूँ वंशका मान,
मेरी सदा रहे यह बान।४

कुरीतियोंको दूर भगाऊँ,
शिक्षाका विस्तार कराऊँ,
मेटूँ सब अज्ञान,
मेरी सदा रहे यह बान।५

श्री केशरीमल आचार्य, लश्कर

तेजोनिधान गाँधी महान् !

तेजोनिधान गाँधी महान् !

गौरव-गिरिके शेखर-स्वरूप,
बल प्रकट आत्मके मूर्ति रूप,
हो क्षीणकाय, गरिमा-प्रधान,
चिर-भाषित त्याग विभूतिमान,
तेजोनिधान, गाँधी महान् !

हो जग-भूषण आराधक भी,
आराध्य तुम्हारा ज्ञान-ध्यान,
है विश्व मानता देव-तुल्य,
चालीस कोटि तन एकप्राण,
तेजोनिधान, गाँधी महान् !

माताकी अंचलमें आये,
पा दिव्य रूप सत्त्वप्रधान,
सेवासे सिंचित कर डाले,
लघु जीवन भी जगके महान्,
तेजोनिधान, गाँधी महान् !

निष्किंचन होकर भी तुमने
जगसे ममता नहिं छोड़ी है,
करते रहते हो प्रतिक्षणमें
भारत-माताका एक ध्यान,
तेजोनिधान, गाँधी महान्!

ध्रुव सत्य अहिंसाके पुटमें
है अति विशुद्ध जिनकी काया,
परिपूर्ण भरा जिसके भीतर
कंचन-मय निर्मल शुद्ध ज्ञान,
तेजोनिधान, गाँधी महान्!

वह सुधा-स्रोत स्रावित होकर
अनशन-प्रवाहमें वाहित हो,
उद्गमसे अन्तिम संगम तक
की आज पारणाका पयान,
तेजोनिधान, गाँधी महान्!

श्री कौशलाधीश जैन, 'कौशलेश'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

भाषाके भण्डारमें, भूषण भरे अनेक,
बिन्दु भारती भालको, भारतेन्दु भी एक।१

महिमें यों महिमा रही, कविनु माँहि हरिचन्द,
तारागन बिच गगनमें, गन्यो गयो जिमि चन्द।२

तेरी कविता-कौमुदी, कवि-मन कुमुद प्रमोद;
रसिक चकोरन चित चढ़्यो, चितवत सहित विनोद।३

सरस रहे सरसिज सरिस, साहित सरहिं सुजान;
मन मधुकर मातो भयो, कविता-मधु कर पान।४

ऋतुराज

कुंज लसें ललितान लतान मनो हरितान वितान सुछाजें,
फूलनके चहुँ ओरन तोरन शब्द विहंगन वाज न बाजें;
हैं रवलीन अलीननकी अवली ज्यों भली बिरदावलि गाजें,
राजके साज सुसाज कै आजु बने ऋतुराज समाज विराजें।

श्री मुनि विद्याविजयजी

दीप-माला

नीति रीति प्रीति तूर्ण नींदमें गई,
झूठ लूट फूट राज्यमें समा गई।

ईति भीति दूर अन्य-तंत्रता गई,
धन्य हिन्द-भूमि दीपमाल आ गई।

गेह द्वार आलिये भरी लगा गई,
रम्य दीप-ज्योतिको लखी मुहा गई।

वर्द्धमान धीर वीर याद आ गई,
वन्दना उन्हें करूँ प्रहर्ष मैं लई।

पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री

भक्ति-भावना

प्रभूके चरणोंमें हम सर झुकाये बैठे हैं ;
उन्हींसे लौ है लगी लौ लगाये बैठे हैं।

सुनें या न सुनें यह तो उन्हींकी मर्ज़ी है ;
हमें तो धुन है लगी, धुन लगायें बैठे हैं।

हमारे ऐबो-हुनर सब हैं उनकी नज़रोंमें ;
दिखाई दें न दें, नज़र जमाये बैठे हैं।

सुनेंगे कैसे नहीं, यह भी कही खूब कही ;
जब कि याँ तनको लगी, तन रमाये बैठे हैं।

जो देते ज्योति हैं सब सूर्य चन्द्र तारोंको ;
उन्हींसे आश है, आशा लगाये बैठे हैं।

श्री सूरजभानु, 'प्रेम'

किनारा हो गया

नाम यों पस्तीमें बालातर हमारा हो गया ;
जिस तरह पानी कुएँकी तहमें खारा हो गया।
क़ौमकी बिगड़ी हुई हालतका नक़्शा देखकर ;
ज़ख्म दिलमें पड़ गये दिल पारा-पारा हो गया।
रंजोग़म फ़ुर्क़तके शोलोंसे जिगर भी जल चुका ;
हो गये वर्बाद गर्दिशका सितारा हो गया।
दिलमें अब इस तरक़्क़ीसे हो गई कुछ-कुछ वहार ;
वर गये अरमां ये पौदा गुल हज़ारा हो गया।
'प्रेम' इस वहरे जहाँमें क़ौमकी किश्ती पड़ी ;
जा लगी जिस जगहपर उस जाँ किनारा हो गया।

विचार लो ?

आपसके द्वेषसे ही गौरव विलीन हुआ,
निज सभ्यताको, निज धर्मको विचार लो ;
वीर वन जाओ, तन जाओ अधिकारपर,
अपने पुनीत विश्व-कर्मको विचार लो ;
धारो क्यों न पौरुष प्रचंड शक्ति साहसका,
अपनी महानताके मर्मको विचार लो ;
फूटको हटाओ और प्रेम करो आपसमें,
उन्नतिका मार्ग ध्रुव कर्मको विचार लो।

श्री बाबूलाल जैन, 'अनुज'

वेदना

अलस इन प्राणोंमें अनजान
मूक भावोंका मधु संगीत।
फूँक देता सुखमय चुपचाप
वेदनाका सखि, निर्मम गीत।१

×

सजनि देखा जिन आँखोंसे
स्वर्ण संसृतिमें मधुर प्रभात।
देखतीं वे हीं वरवश आज
भयावह भीषण काली रात।२

×

टपकता होठोंसे उल्लास
सुखावह करता नयनोन्मेष।
चार दिन फिर परिवर्तन-से
देखता हूँ क्लेशोंपर क्लेश।३

न जाने क्यों मानसमें हूक
उठा करती बन हाहाकार।
विश्वमें लख अन्यायी जीत
जाग उठता है पापाचार।४

×

गगनचुम्बी सुन्दर प्रासाद
जहाँ होता था सुखदविहार।
प्रकृतिका परिवर्तित सुख वहाँ
उलूकोंके मिलते घर द्वार।५

×

न जानें वे सुखके दिन कहाँ
लुप्तसे हो जाते अज्ञात।
चपल चपला सा वैभव लोल
स्वप्न माया बन जाता प्रात।६

जीर्ण जिन झोपड़ियोंके बल
खड़े धनिकोंके हर्म्य अपार।
उन्हींमें रोटीके बिन हाय
मचा बच्चोंका हाहाकार।७

विश्व-पालक ओ कृषक महान
धनिकका तुम पर अत्याचार।
देख बरबश इन आँखोंसे
अश्रुकी बहती झर-झर धार।८

× ×

हाय रे कुपित काल विकराल
तुम्हारी ही भीषण चितवन।
खींच लेती है जगके प्राण
मचाकर मानसमें अनवन।९

क्षणिक सुन्दरता हास विलास
क्षणिक उत्पीड़न सिहरन वास।
प्रलयका बढ़ता देख विकास
मृत्यु डाकिन करती है हास।१०

सृजनमें मिलता है संहार
अगण शस्त्रोंका विकट प्रहार।
क्षितिजपर कंकालोंका भार
बहा करती नित शोणित धार।११

× ×

हृदय, तज़ यह निष्फल संसार
खेलता सुख जगके उस पार।
जिसे तू खोज रहा घर द्वार
शान्ति, वह मिलना है दुसवार।१२

श्री साहित्यरत्न पं० हीरालाल जी, 'कौशल'

कैसे दीपावली मनाऊँ ?

(१)

समर सघन घन घूम रहे हैं,
यान भूमि-नभ चूम रहे हैं,
टैंक, गैस गन झूम रहे हैं,
किस विधि हत्याकाण्ड मिटाऊँ ?
कैसे दीपावली मनाऊँ ?

(२)

देश गुलामीमें जकड़ा है ;
वैर फूटका पाँव अड़ा है,
मरणासन्न समाज पड़ा है,
कहो कौन रस घोंट पिलाऊँ ?
कैसे दीपावली मनाऊँ ?

(३)

वीर मार्ग अव छिन्न हुआ है,
सव पन्थोंमें मचा जुआ है,
गहरा अति विद्वेष कुआँ है,
क्योंकर खींचातान मिटाऊँ ?
कैसे दीपावली मनाऊँ ?

श्री सिंघई मोहनचन्द जैन, कैमोरी

परोपदेश कुशल

१ था प्रभातका समय मनोहर पवन सुरीली थी चलती।
कञ्ज कली अति ललित मुदित मन रविकिरणोंसे थी खिलती॥
जलद खंड आभा अनूप युत थे नभमण्डलमें छाये।
विटपोंपर थे विहँगवृन्द कलरव करते वहु मन भाये॥

२ झर-झर करती सुन्दर सरिता तरल मन्दगतिसे बहती।
लता गुल्म युत उसके तटपर आँखें निश्चल हो रहतीं॥
इसी मनोरम भूमि भागपर फिरती थी डोली-डोली।
प्रेम-भरी गम्भीर केंकड़ी निज सुतसे बोली बोली॥

३ सरल पन्थगामीके सवही जगजन गुणगण गाते हैं।
सरल चाल है सब सुखदायक नीतिवान् वतलाते हैं॥
इससे मैं समझाती तुमको चलो चाल सीधी प्यारे।
मिले बड़ाई तुम्हें सब कहीं शीतल हों मेरे तारे॥

४ माताके सुन वचन पुत्र यों हँसकर बोला मृदु वानी।
सादर है स्वीकार मिली जो सीख मुझे जननी स्यानी॥
लेकिन एक विनय है मेरी यही एक मेरा कहना।
सरल चाल चल करके मुझको सिखला दो सीधा चलना॥

५ सुन करके यह उत्तर सुतका उसे न सूझा कोई उपाय।
अपनी टेढ़ी चाल छोड़ वह चल न सकी डग-भर भी हाय॥
पर उपदेश कुशल होकर जो स्वयं नहीं कुछ कर सकते।
उनकी होती दशा यही है लज्जित हो वे चुप रहते॥

श्री दुलीचन्द, मुंगावली

पैसा ! पैसा !!

मानव वक्षस्थलपर नर्तन,
भावोंका क्रन्दन, आकर्षण,
हृद् हृद्की ध्वनि, तेरा अर्चन,
धनिकोंकी मृदु तृष्णा, पैसा।
दीनोंका करुण रुदन, पैसा॥
यह रव कैसा ?
पैसा, पैसा !!

तुझसे मानवताका विकास,
तुझसे मानवका सर्वनाश,
तू अन्धकार, तू है प्रकाश,
काग़ज़, कंकर, पत्थर, पैसा।
सहृदय अरु हृदयहीन, पैसा॥
यह रव कैसा ?
पैसा, पैसा !!

धनिकोंका उर तेरा निवास,
तृष्णाकी ज्वाला तव प्रकाश,
अय ! दीनोंके अन्तिमोच्छ्वास,
दीनोंपर शासन यह कैसा ?
निष्ठुरता, दानवता, पैसा॥
यह रव कैसा ?
पैसा, पैसा !!

हिंसा, जग-क्रन्दन है, पैसा,
तृष्णा, असत्य, माया, पैसा,
जो कुछ है सब वह है, पैसा,
जीवनकी उथल-पुथल, पैसा।
संसार कुछ नहीं, है पैसा॥
यह रव कैसा?
पैसा, पैसा!!

श्री नरेन्द्रकुमार जैन, 'नरेन्द्र'

आया द्वार तुम्हारे भगवन्, आया द्वार तुम्हारे

चैन नहीं चारों गतियोंमें
भटक रहा वन-वन गलियोंमें
जान नहीं पाया था तुमको
अब तो करो दया रे।१

कर्मोंने वन-वन भटकाया
पग-पगपर दुख दे अटकाया
चैन नहीं है ऊपर नीचे
दुनिया केवल माया रे।२

दो दिनकी मेरी जिंदगानी
दुनिया दुखकी एक निशानी
जब आ जाये कालचक्र तब
उठ जाये सब डेरा रे।३

नभमें जगते जगमग तारे
कालचक्रसे सब ही हारे
जगविजयीको जीता तुमने
मुझको आज बचा रे।४

भवसागरमें मेरी नैया
कोई नहीं है आज खिवैया
तुमने अगणित जीव उबारे
मुझको पार लगा रे।५

मैं अपनेको भूल गया हूँ
पुद्गलको निज मान चला हूँ
कैसे भूल मिटे यह मेरी
किससे कहूँ बता रे।६

चरणोंमें मैं आया तेरे
बार-बार मुझको दुख घेरे
अतल जलधिमें नैया झूले
अब पतवार लगा रे।७

श्री चौधरी देशदीपक जैन, 'दीपक'

झनकार

झनकार उठी झनकार उठी।

श्रमिकोंका रक्त बहानेको।
दुनियाका वैभव पानेको।
अपना प्रभुत्व दिखलानेको।
दुनियामें लूट मचानेको।
जगतीके कोने-कोनेसे–
तलवार उठी तलवार उठी।
झनकार उठी झनकार उठी॥

यह श्रमिक नहीं हैं, दाता हैं।
धनिकोंके भाग्य विधाता हैं।
इन नभचुम्बी मीनारोंके–
बस ये ही तो निर्माता हैं।
उनके हृदयोंसे एक वार–
हुंकार उठी हुंकार उठी।
झनकार उठी झनकार उठी॥

तुम इन्हें न समझो दीन हीन।
यह हों चाहे वैभव-विहीन।
इनकी आहोंसे एक सृष्टि–
रच जाती है बिल्कुल नवीन।
इन भोले-भाले हृदयोंसे–
फुंकार उठी फुंकार उठी।
झनकार उठी झनकार उठी॥

श्री रवीन्द्रकुमार जैन

मज़दूर

मैं एक अभागा उनमेंसे, जिनके पल्लेमें पुँजी नहीं।
श्रम करते हैं जो रात-रात, फिर भी सुख-शय्या सजी नहीं॥

आठों प्रहरोंमें चैन नहीं, सोते तकमें वे मौन नहीं,
स्वप्निल भाषामें कह उठते, कलको घरमें फिर नौन नहीं।
अब क्या कह दूँ जीवनगाथा, स्वर वीणा भी तो बजी नहीं ॥१॥ मैं एक..

सिर पैर पसीना एक किये, फिर भी पाते हैं चैन नहीं,
कितनी आकुलता दुर्बलता, समताके मुखसे बैन नहीं।
जीवन स्वरमें सुखकर स्वरभर, गुणि गण गरिमा तक गुँजी नहीं॥२॥ मैं एक..

मृतिका केवल जिनकी शय्या, मृतिका ही का शिरहाना है,
मृतिकामें जीवन पाया है, मृतिकामें ही मिल जाना है।
कैसे पलङ्ग क्या मसहरीं, जिनके कानोंने सुनी नहीं॥३॥ मैं एक..

पंडित दयाचन्द्र जैन, शास्त्री

कहाँ है वह वसन्तका साज ?

(१)

पतनसे व्याकुल था संसार
त्रसित हृदयोंकी करुण-पुकार।
हुआ था धीर वीर अवतार
मिला जगको वह प्राणाधार॥
कहाँ था षड् ऋतुका साम्राज,
कहाँ है वह वसन्तका साज ?

(२)

भरा था विश्वप्रेमका भाव
प्राणिरक्षाका था समभाव॥
"जिओ, जीने दो" यह प्रियमन्त्र
सुनाया था कर आत्मस्वतन्त्र॥
कहाँ वह रामराज्यका साज।
कहाँ है वह वसन्तका साज॥

(३)

वहाया स्याद्वादका गङ्ग
चलाया सत्य अहिंसा भङ्ग।
नहाया निखिल प्राणि सप्रेम
हुआ उज्ज्वल पथ-जगत्-असीम।
कहाँ वह वीर, वीर-युवराज
कहाँ है वह वसन्तका साज?

(४)

धार्मिक-द्वेष बढ़े हैं आज
रूढ़िसरितामें मग्न समाज।
भारती माँका करुण-विलाप
बढ़ाता सहृदय जन-सन्ताप।
पतनके अभिमुख सभ्यसमाज
कहाँ है वह वसन्तका साज?

पं० कमलकुमार जैन शास्त्री, 'कुमुद', खुरई

साम्राज्यवाद

मानव-सन्ततिपर गोलोंकी कितनी भारी बौछारोंसे,
कितने अत्याचारों-तीरों-तलवारोंके हा ! वारोंसे ;
आहोंके कितने मेघोंसे कितने शोणितकी धारोंसे,
कितनी अबला-विधवाओंके हा ! खारे पारावारोंसे ;

नरके कितने कंकालोंसे,
साम्राज्य रूप निर्माण हुआ ?
ओ ! मानवके इतिहास बता,
इससे कितना निर्वाण हुआ ??

हा ! क्रोध-स्वार्थ-निर्दयताके कितने झूठे अरमानोंसे,
कितने छलसे बलसे विषसे कितने भयसे अभिमानोंसे ;
कितने दुष्टोंकी लिप्सासे कितने वीरोंके बलिदानोंसे,
कितने नरकोंकी ज्वालासे कितने पापोंकी खानोंसे ;

कितने भूखोंके शोषणसे,
साम्राज्यवादका त्राण हुआ ?
ओ ! मानवके इतिहास बता,
इससे कितना निर्वाण हुआ ??

श्री गोविन्ददास काठिया

वसन्त-आगमन

सरिता समुद्र प्रतिभा सँयुक्त,
नलनी निकुंज कलहंस युक्त,
उपवनके मनहर कुंजोंमें,
कलरव-ध्वनिका है चमत्कार।
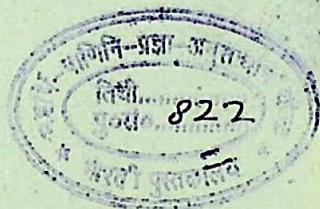
कमनीय वनी मधु-ऋतु समीर,
विरही विटपोंको कर अधीर,
रमणीय रसाल बौरपर भी,
कोयलकी कुहु-कुहु है पुकार।

कलियाँ, कदम्व, कदली, कँमोद,
चम्पक, गुलाव, जुहि, किंशु, कुन्द,
भर लाई विविध विरंग रंग,
श्रुतिरम्य मधुपगणकी भँकार।

पपिहाका 'पिउ-पिउ' नाद कहीं,
मुरलीका मधुर सुराग कहीं,
सुमनोंकी मधुर परागोंसे,
मधु-वनमें तेरी छवि अपार।

मनमोहन प्रेम वसन्त सभी,
भर लाते हृदय उमंग नवी,
पर आज रक्तधारा लखकर,
कर रहे रसिकजन चीत्कार।

श्री युगलकिशोर 'युगल'

मानव

शान्त हृदय-सा बैठा मानव
हियमें आशा-जाल छिपाये ;
बेसुध दीवाना मतवाला
अपने रँगका साज सजाये।

स्वप्नोंकी रुनझुनमें उसका
आशा-सागर उमड़ा सारा,
आशाओंकी धुन ही धुनमें
करने केलि लगा बेचारा।

तारक-अवली लुप्त हुई जव
विहँसी सुन्दर ऊषा-लाली,
छलका भानु प्रभाकर विकसित
करने मानव-आशा लाली।

जव सोचा मानवने मेरा
आशा-फूल खिलेगा सारा,
सहसा वज्राघात हुआ तव
खण्डित हो उसका हिय हारा।

क्योंकर जाने, वक्र दैव-गति
आशाका मुरझाया मानव,
देख रहा नश्वर जीवनको
आशाका ठुकराया मानव।

श्री अभयकुमार 'कुमार'

जागृति-गीत

हम जागें और जगायें !

उषा हुई, तारे हैं भागे, हम पीछे रह जायें ;
ग्लानीसे सर धुन धुनकर क्यों, हम रोते रह जायें ।

हम जागें और जगायें !

नीड़-नीड़में प्रतिभा, मानव, तेरी बढ़ती पायें ;
जहाँ तिमिर आलोक वहाँ है, फिर भी रोते जायें ।

हम जागें और जगायें !

प्राचीकी वह लाली सुन्दर, काली रेखा उसमें ;
इंगित करती दीख रही है, आओ, हम, बढ़ जायें ।

हम जागें और जगायें !

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, सबको अन्त मिलायें ;
गिरजा, मस्जिद, गुरुद्वाराका बढ़के भेद मिटायें ।

हम जागें और जगायें !

देश धर्मकी राह खोजकर, आगे बढ़ते जायें ;
आज़ादीका सिंहनाद कर छाती ताने जायें ।

हम जागें और जगायें !
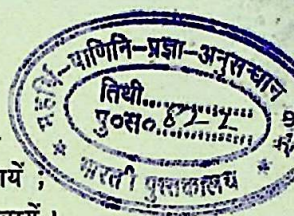
श्री निहालचन्द्र, 'अभय'

ओ गानेवाले गाये जा

ओ गानेवाले, गाये जा।
मातृभूमिकी बलिवेदीपर अपना रक्त चढ़ाये जा।

जल-थलमें वह तूफ़ान उठे,
चाहे लहरोंसे लहर भिड़े,
वही अँधेरी आँधी आये,
पर तेरा वह ही राग छिड़े।

धमनीमें जोश उमड़ आये,
हो नाड़ीकी भी गति आगे,
यह जोशपूर्ण विद्युत-तरंग,
कण-कणमें अग्नि लगा भागे।

तन-मनमें जोश उठे भारी,
ओ, ऐसा राग सुनाये जा,
शुभ परिवर्तनकी चिनगारी,
कुछ सुलग चुकी, सुलगाये जा।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

के

हिन्दी प्रकाशन

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहित-कारी
मौलिक साहित्य का निर्माण
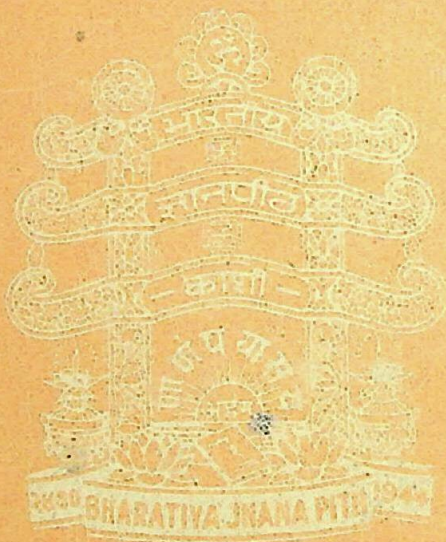
संस्थापक
सेठ शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद